॥ श्रीः ॥

गीतार्थप्रकाश ।

अर्थात्

श्रीमद्भगवद्गीता ।

भाषा ।

जिसको

श्रीयुत [illegible] बू [illegible] हाँ [illegible] वर्नमेन्ट [illegible] नर केसरगंज (बाबू मोहल्ला)
अजमेर तथा निवासी शा[illegible]गज (कटरा [illegible]) [illegible]
हिन्दी भाषाके सोरठे व चौपाइयोंमें बनाया,

और

बम्बई

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयन्त्रालयमें
[illegible] सिद्ध किया ।

प्रथमवार २००० कापी छपी

मूल्य ।=) (कागजकी जिल्दके)
॥) कपडेकी जिल्दबँधीके ।

संवत् १९६७, शके १८३२.

॥ श्रीः ॥

गीतार्थप्रकाश ।

अर्थात्

श्रीमद्भगवद्गीता ।

भाषा ।

जिसको

श्रीयुत बाबू कन्हैसिंह गवर्नमेन्ट पेन्शनर केसरगंज (बाबू मोहल्ला)
अजमेर तथा निवासी शाहगंज (कटरा सोरों) आगराने
हिन्दी भाषाके सोरठे व चौपाइयोंमें बनाया,

और

बम्बई

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयन्त्रालयमें

मुद्रित कराय प्रसिद्ध किया ।

संवत् १९६७, शके १८३२.

समर्पण.

विद्यामें अकथनीय अनुराग, साहित्यमें अवर्णनीय प्रेम, कवितामें अवचनीय रसिकता, ईश्वरमें अतुलनीय भक्ति और वेदान्त विचारमें अनुपम मनोवृत्ति आदि जिनके सद्गुण हैं:—

उन्हीं

श्रीमान् मशीरुद्दौला रायबहादुर नानकचन्द सी. आई. ई. मिनिस्टर इन्दोर स्टेट के कर कमलमें

यह लघु पुस्तक

उनकी उदार अनुमति पाकर सादर सानुराग सविनय समर्पित करता हूं.

ता० १४ जून सन् १९१०

कर्त्ता—
कन्हैसिंह,
गवर्नमेन्ट पेन्शनर निवासी
शाहगंज (कटरा सोरों)
आगरा.

ओम् तत्सत्

भूमिका.

विदित हो कि श्रीमद्भगवद्गीता पर अनेक महात्मा और सज्जन पुरुषों ने टीका संस्कृत तथा हिन्दी आदि अनेक भाषाओं में किया है और आज कल प्रचार इस धर्मपुस्तक का बहुत हो रहा है यहां तक कि अन्य देश के लोग भी इन भगवत वाक्यों को अपनी २ भाषाओं में टीका करिके उनका प्रचार कर रहे हैं इस कारण मेरे मनमें भी उत्साह हुआ कि इस पुस्तक के श्लोकों के अर्थ को हिन्दी भाषा के छन्दों में लिखूं सो श्रीकृष्ण भगवान ने अपना दास जान कर मेरे मनोरथ को पूर्ण किया.

मैंने श्री स्वामी चिद्घनानंद गिरिजी की 'गूढार्थदीपिका' नामक भाषा टीका से और श्रीयुत पंडित श्रीधरजी की संस्कृत टीका से आशय लेकर श्री गुरू महाराज के चरणों के प्रताप से चौपाई और सोरठों में कथन किया है और कहीं २ दोहे भी कहे हैं सो श्लोकों में से नहीं हैं. जहां कहीं मैंने "—" इस प्रकारके चिह्न दिये हैं वे श्लोकों से अतिरिक्त समझने चाहिये.

मैंने इस में मूल श्लोक नहीं लिखे हैं केवल श्लोकों की संख्या जहां पर हरएक श्लोक का अर्थ पूर्ण हुआ है चौपाई अथवा सोरठेके आगे उसी श्लोक का नम्बर दे दिया है इसलिये कि किसी सज्जन को यदि मूल से मिलाने की आवश्यकता पड़े तो देखने में सुगमता हो.

हर एक पन्ने के नीचे कठिन शब्दों के अर्थ भी लिख दिये हैं. श्रीयुत पंडित देवी शंकर भट्टजी जो ट्रैफिक सुपरिटेन्डेन्ट राजपूताना मालवा रेलवे के दफ्तर में नोकर हैं और श्रीयुत पंडित दामोदरदासजी हेड पंडित गवर्नमेण्ट कालेज अजमेर इन दोनों परोपकारी विद्वान् सज्जन पुरुषों ने इस चरणसेवक के ऊपर अति कृपा करिके अच्छी

प्रकार प्रत्येक श्लोक के अर्थ का विचार करिके इसको संशोधित किया है. इन दोनों सज्जनों ने जो परिश्रम किया है उसका मैं अनेक धन्यवाद इनको देता हूं और श्रीकृष्ण भगवान से प्रार्थना करता हूं कि दोनों सज्जन पुरुषों को चिरायु करै.

मैं न तो कवि हूं और न पंडित हूं यह जो कथन किया है सो केवल अपने मन को श्रीकृष्ण भगवान् के चरणों में भक्ति उपजाने के हेतु किया है इस कारण सब सज्जन पुरुषों से मेरी यह विनय है कि जहां कहीं कुछ भूल चूक पावें मुझको अपना सेवक जान कर क्षमा कर मुझे सूचित करें.

हरिभक्तोंका दास,

कन्हैसिंह, गवर्नमेन्ट पेन्शनर.

निवासी शाहगंज (कटरा सोरों)-**आगरा.**



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीमद्भगवद्गीता भाषा।

वन्दना।

दोहा–जयति अनादि अनंत जय, जग कारण जगरूप।
जय जय दृश्यादृश्य मय, व्यापक ब्रह्म अनूप॥
वंदन करि तिहि ध्यान धरि, गुरुकी कृपा सुपाय।
गीता भाषा छन्द मय, रचौं सरल सुखदाय॥
चौ०–अध्यायी अष्टादश मैया। तव[1] पद नावत माथ कन्हैया॥
हे माता हे भगवद्गीता। तुम सम और न कोउ पुनीता॥
करत ध्यान तुमरा चित लाई। तुर्तहि अर्जुन शोक मिटाई॥
अर्जुन हेतु स्वयं भगवाना। नारायण निज मुखहि बखाना॥
व्यास पुराण मुनी विख्याता। कथन करी रण बिच हरिबाता॥
अद्वैत[2] अम्मृत[3]को वर्षाया। पान किया जिन अति सुख पाया॥
द्वेष जगत तैं करने हारी। धारण करत तुमहि माता री॥
बार बार पुन बारम्बारा। धरत कन्हैया ध्यान तुम्हारा॥
सोरठा–अहो व्यास मुनिराय, अति विशाल तव बुद्धि है।
मानो कमल खिलाय, ऐसे नेत्र लखात हैं॥
भारत रूपी तेल, दीपक ज्ञान स्वरूप कर।
जोड़ा तामें भेल, नमस्कार मेरा तुमहि॥
चौ०–करमें वीणा लकुट[4] विराजै। मोर मुकुट माथे पर साजै॥
मुरली अधर[5] धरैं गिरि धारी। बांकी चितवनकी छबिन्यारी॥

---

१ तुम्हारे. २ लासानी. जिसके समान दूसरा नहीं है. भेदरहित.
३ मृत्युसे छुटाने वाला. ४ छडी. ५ होठ.

गीता अम्मृत दोहन हारे । ज्ञान स्वरूपी कृष्ण मुरारे ॥
शरणागति जो आय तुम्हारी । कल्प[1] वृक्ष तुम तिहि बनवारी ॥
नमस्कार प्रभु बारम्बारा । करत कन्हैया हो स्वीकारा ॥
सर्व उपनिषद गाय बनाई । दोहन हारे कृष्ण कन्हाई ॥
गीता रूपी दुग्ध निकाला । सोई अम्मृत महत विशाला ॥
पीवत अर्जुन वत्स[3] समाना । अरु सद बुद्धी लोग सुजाना ॥

दोहा—भए पुत्र वसुदेवके, कृष्ण सकल सुख धाम ।
दाता परमानंद के, देवकी हि घनश्याम ॥

चौपाई.

कंस पातं[4]की अति दुखदाई । ताकों प्रभुजी मारा आई ॥
केशी आदि सकल भट मारे । मुष्टिक चाणुर मल्ल पछारे ॥
अध[6]म पूतना हरि उद्धारी । धन धन महिमानाथ तुम्हारी ॥
व्रज रक्षा हित निज चित दीना । बूडत ताहि राख तुम लीना ॥
सुरपति मान भंग तुम कीना । काली नाग नाथ तुम लीना ॥
बच्छ ग्वाल ब्रह्मा हर लीने । तव महिमा लख भए अधीने ॥
जगत गुरू तुम नंद दुलारे । मात यशोमत के अति प्यारे ॥
करत वंदना दास कन्हैया । उभय चरण विच मुरलि धरैया ॥

सोरठा—धन्य धन्य गोपाल, भक्तन दुख अरु अघ हरण ।
अरु दीनन रिछपाल, विश्व भरण तारण तरण ॥

चौपाई.

समर[10] नदी अरु बानन धारा । भीष्म द्रोण दो तट[11] अनुसारा ॥
जयद्रथ नीर[12] समान हि जानो । नील कमल गांधार बखानो ॥

---

१ सर्व कामनाओंको पूर्ण करने वाले. २ अच्छा. ३ बछड़ा. ४ पापी. ५ वीर, योधा. ६ पापिन. ७ इन्द्र. ८ प्यारे. ९ पाप. १० लड़ाई ११ किनारा. १२ जल.

ग्राहवती सुशल्य भट भारी। कृपाचार्यजू वहते वारी[2]॥
अश्वत्थाम विकर्ण सुधीरा। मानो घोर[3] मकर दो वीरा॥
रथी आदि घड़याल हिलोरैं। नृपसुत कच्छ मच्छ झकझोरैं॥
मीन तुल्य सेना विस्तारी। जानो कर्ण समय भयकारी॥
नृप दुर्योधन भँवर समाना। रण रूपी नदि माहि घुमाना॥
पांडु सुतन सब पार उतारन। केवट[4] बने आप गिरिधारन॥
सोरठा—बहत नदी असरार[5], धर्म नाव पै बैठ के।
पांडव उतरे पार। डूबे कौरव हरि विमुख॥

चौपाई.

भारत रूपी कमल बनाया। कलि रूपी मल सर्व नशाया॥
मुनी पराशरके सुत व्यासा। अमल[6] कमल समवचन प्रकासा॥
ताहि सरोवँर तैं उपजाया। गीता अर्थ सुगंध बसाया॥
कथा अनेक प्रकार बनाई। सोई केसर तुल्य लखाई॥
हरि गुण कथन ज्ञान उपजावत। लोक विषे सज्जन सुख पावत
संतन रूपी भ्रमर लुभाये। अनद सहित रस पान कराये॥
करत प्रणाम कन्हैया माता। करि कल्याण होउ सुख दाता॥
हो जिन कृपा मूक[10] वाचाला। पंगु[12] फलांगत गिरि तत्काला॥
सोरठा—माधव परमानंद, सुख दाता मंगल करन।
सत चित आनंदकंद, नमस्कार मेरा तुम्हें॥

चौपाई.

ब्रह्मा वरुण मरुद्गण सुरपति। रुद्र आदि जितने हैं देवत॥
सबही दिव्य स्तोत्रों करिके। वंदन जासु करत चित धरिकै॥

---

१ डुबाने वाला. २ जल. ३ भयानक. ४ मल्लाह पार उतारने वाले. ५ ज़ोरसे. ६ मलरहित. ७ तालाव. ८ कमलकेफूलके भीतरकी महीन२ पंखड़ियां. ९ भौंरे. १० गूंगा. ११ बड़ाबोलनेवाला. १२ पंगुआ.

गान वेदके करने हारे। श्रुति वेदाङ्ग पद क्रम उच्चारे ॥
अरु उपनिषद आदिसे जाकों। गावत हैं सब मिलकर ताकों॥
ध्यान परायणहो योगीजन। देखत जाय लगाकर निजमन॥
सुर अरु असुर सभी जिहि ध्यावैं।सबही जासु अन्तनहिं पावें॥
उसी देव के अर्थ कन्हैया। नमस्कार कर लेत बलैया ॥
विनय करत पुन बारम्बारा। दास प्रार्थना हो स्वीकारा ॥

सो०—अहो कृष्ण सुख धाम। बार बार मम विनय यह ॥
हो यह पूरण काम। अन्त देउ निजधाम मुहि ॥

प्रथम अध्याय।

दोहा–"कहत प्रथम अध्यायमें, अर्जुन कीन्ह विषाद ।
संजय ने धृतराष्ट्र तैं, वर्णा सो सम्वाद" ॥

(धृतराष्ट्र उवाच) चौपाई.

धर्म क्षेत्र कुरु क्षेत्र मझारा । ममसुत अरु ये पांडुकुमारा ॥
युद्ध हेतु एकत्र भए सब । हे संजयते कहा करत अब ॥१॥
सं॰उ॰-ता आरंभ काल संग्रामा । राजा दुर्योधन जिन नामा ॥
पांडव सेन व्यूह लख रचना। निकट द्रोण जा बोले वचना॥२॥
हे आचार्य पांडु सुत सेना । है महान यह तुम लख लेना ॥
बुद्धिमान तव शिष्य द्रुपद सुत। तिन यह करी व्यूह रचना सुत ३
युद्ध काज या सेन मझारी । शूर महान वीर धनु धारी ॥
महारथी विराट युयुधाना । द्रुपदरु अर्जुन भीम समाना ४॥
सोरठा–चेकितान बलवान, धृष्ट केतु अरु काशि पति ।
पुरुजित शैब्य बखान, कुन्तिभोजनर श्रेष्ठ ये ॥ ५॥

चौपाई.

महापराक्रम करने हारा । नाम युधा मन्यू विस्तारा ॥
वीर्यवान उतमौजा राजा । पंच द्रौपदी पुत्र समाजा ॥
अरु अभिमन्यु नाम नृप वीरा।सबहि महारथिहैं रण धीरा ॥६॥
हमसबमें जे श्रेष्ठ कहावें । तिन्हें द्विजोत्तमतुमहि गिनावें ॥
सेन प्रधान नायकन नामा। तुमहि बताऊँ हे सुख धामा ॥७॥

---

१ राजा धृतराष्ट्रका रथवान और व्यासजीका शिष्य था. २ शकटाकार तथा पद्मादिआकार. ३बडी. ४ पाञ्चालदेशका राजा द्रुपद पांडवोंका सुसराथा महारानी द्रौपदी इसीकी बेटी थी. द्रुनाम वृक्ष का है पदनाम चिह्नकाहै ता वृक्षकाहै ध्वजाविषे चिह्न जिसके ताका नाम द्रुपद है. ५ अकेला दशसहस्र धनुषवाले शूर वीरोंके साथ युद्ध करनेवाला तथा शस्त्र शास्त्र विषे अत्यंत कुशल पुरुष.

कर्ण भीष्म तुम अश्वत्थामा । कृप जीतन वारे संग्रामा ॥
सौमदत्ति सविकर्ण जयद्रथ । औरौ वहुत शूर रण समरथ ॥८॥
मम हित करि निज जीवनत्यागें । नाना शस्त्रधरैं रण साधें ९

सो०-सेना अधिक हमार, तदपि समर्थ न युद्ध हित ।
लघु है पंडु कुमार, युद्ध विषे समरथ तऊ ॥
यहजो सेना मोर, सो है रक्षित भीष्मकरि ।
जासु प्रीति दो ओर, सेन पांडवन भीम करि ॥१०॥

चौपाई.

या कारण तुम सवही वीरा । सर्व प्रवेश मार्गनाहि तीरा ॥
सेना रचना व्यूह सुजाना । ठाडे हो निज निज करि स्थाना॥
भीष्मपिता मह पर चितदीजे । सर्व ओर तैं रक्षा कीजे ॥११॥
वृद्ध पितामह महा प्रतापी । सिंह नाद करि घोर अलापी ॥
ऊंचे स्वर तैं शंख बजाया । दुर्योधन मन हर्ष बढाया १२
तवहि शंख पणवानक भेरी । गोमुख वाजे एकहि वेरी ॥
उग्र शब्द तिन भा ता पाछे÷। अश्व श्वेत लागे रथ आछे॥१३॥÷
जामें माधव पार्थ विराजे । दिव्य शंख तिन हू के बाजे १४

सो०-हृषीकेशभगवान, पांचजन्य निजकर गहा ।
लिया धनंजयजान, देवदत्त निज शंख कों ॥
शंख पौंडरक नाम, लिया भीम निज कर विषे ।
करत भयानक काम, वृक समान जिन उदर है ॥१५॥

---

१ पणव = ढोल; आनक = नगाडे २ नफीरी. ३ रणसिंहा. ४ लक्ष्मीजी-केपति. ५ पृथाका पुत्र अर्जुन पृथा वसुदेवकी भगिनी रही ६ इन्द्रियोंके प्रेरक ७ हाथ ८ सर्व दिशाओंके जयकाल विषे सर्व राजाओंको जीत करिके अर्जुन धनको लायाथा या कारण अर्जुनको: धनंजय कहैं हैं. ९ अग्नि ।

चौपाई.

कुन्ती पुत्र युधिष्ठर राजा। शंख अनंत विजय तिन बाजा ॥
नकुल सुघोष शंख धुनि लाया। मणि पुष्पक सहदेव बजाया १६
काशी राजा महा धनुर्धर। जान शिखंडी महारथी वर ॥
धृष्टद्युम्न विराट सुवीरा। सात्यकि अपराजितरणधीरा १७
द्रुपद द्रोपदी पञ्च कुमारा। पुत्र सुभद्रा जीतन हारा ॥
जे भूमी पति वीर गिनाए। पृथक पृथक निज शंख बजाए १८
सो महान् शंखन ध्वनि छाई। भूमी अम्बर माहि समाई ॥
कौरव सुत सम्बन्धी सारा। उग्र शब्द तिन हृदय विदारा १९
सो०-हे भूमी के नाथ, भय उत्पात्ति अनंतरहु।
कुरु सम्बंधी साथ, लख कर थित यह युद्ध हित ॥

चौपाई,

शस्त्र प्रहार प्रवृत के काला। कपि ध्वज अर्जुन धनुषसंभाला ॥
हृषीकेश तैं वचन उचारे×। हे अच्युत दो सेन मझारे २० ॥×
कीजे मोर रथहि को थापन। यावत देखूं में योधाजन २१
युद्ध काज तो रण सुविचास्थित। भली भांति में देखूं जित तित॥
कारि हौं किन किन संग लड़ाई। या संग्राम विषे यदुराई २२
दुर्बुद्धी धृतराष्ट्र कुमारा। तिन हित करन युद्ध पग धारा ॥
युद्ध कामना करने हारे। देखूं में तिन भली प्रकारे २३
सं०उ०-भारत गुड़ाकेश अर्जुन जब। कहे वचन अस हृषीकेश तब॥
सो०-सेना उभय मझार, सन्मुख भीषम द्रोण अरु।
सबही राज कुमार, रथ थापन करिकै कहा ॥

१ श्रेष्ठ २ जिसको कोई जीत न सके. ३ आकाश. ४ महान. ५ फाडा. ६ हनूमान जीकी मूर्ति ध्वजामें लिखी हुई. तथा हनूमानजी ध्वजा में विराजमान. ७ अविनाशी सर्वदा निर्विकार. ८ जहां तांई. ९ जिधर तिधर. १० निद्राको जीतनेवाला।

चौपाई.

हे पारथ कौरवन सँभारो । जुडे सर्व इक ठौर निहारो २४-२५
तव पारथ देखे सुत नाती। पिता पितामह मित्र सँगाती ॥
शुशुर सुहृद गुरु मातुल[1] भाई। उभय सेन बिच देत दिखाई ॥
सो कुन्ती सुत भली प्रकारा। सर्व बांधवन लख तिहि बारा ॥
परमकृपा करि व्याप्त विषादा। या प्रकार सो वचन जंगादा[2] २६-२७
कृष्ण प्राप्तया भूमि मझारे। जे रण इच्छा करने हारे ॥
तिन सब स्वजनन देख हमारा। अंग व्यथहि प्रापत भा सारा ॥
मुख सूखत ममगात सिरावे। रोम हर्ष तन देह कपावे २८-२९
सो०-कर[3] तैं धनुष गिरात, दाँह[4] त्वचामें होत है।
मन हू मोर भ्रमात, ठाढा हू नहि रह सकत ॥ ३० ॥

चौपाई.

केशव[6] निमित[7] लखत विपरीत[8]। लखत श्रेय[9] नहि हाँने[10] निजमीतो[11] ३१
विजय राज सुख इच्छा नाही। हे गोविंद[12] कहा इनमाही ॥
राज विषय सुख विजय कन्हाई। का फल हमें मिले सुख दाई ३२
राज विषय सुख चाहत जिन हित। ते जीवन धन तजत रणस्थित
हे भगवन रण भूमि मझारे। कोऊतो आचार्य हमारे ॥
कोउ पितामह[13] पित सुत नाती। मातुल[14] शुशर श्याल[15] हितु जाती ३४
हे मधुसूदन[16] यह मुइ मारैं। तोऊ हम न इनहि संहारैं[17] ॥
भूमी राज कहा जो पाऊँ। राज त्रिलोकी तुच्छ[18] गिनाऊँ ३५

१ मामा. २कहा. ३हाथ. ४जलन. ५ग्वाल. ६केशी नाम दैत्यको मारनेवाले श्रीकृष्णभगवान. ७फल. ८उलटा. ९भला. १०मारकर. ११अपने १२=(गो=वेदकी भाषा,विद=पाना अर्थात् जोवेदसे जाने जातेहैं अथवा गो=गाय विद=पाना अथवा गो=स्वर्ग,विद=पाना अर्थात् जिसकी भक्ति करनेसे स्वर्गपाते हैं) श्रीकृष्णका नाम. विष्णुभगवान वेदलभ्य. १३दादा. १४मामा. १५साला. १६मधुनामदैत्यको मारने वाले. १७मारैं. १८छूछा.

सो०-कहो जनार्दन[1] आप, हम को कौन प्रसन्नता[2] ॥
मारे ह्वै है पाप, आततायि[3] सुत अन्ध के ॥ ३६ ॥
चौ०-हे माधव मम बांधव लोगू। कोऊ हनन करन नहि योगू ॥
कौरव सुत निज बंधु कहावें। स्वजन हने हम का सुख पावें ३७
यद्यपि यह सब लोभग्रस्त[4] चित। देखत दोष नही कुलक्षय कृत
पातक मित्र द्रोह नहि देखें। हम क्यों नहि भगवन सब पेखें ३८
अहो जनार्दन दया निधाना। कुलक्षय में दूषण हम जाना ॥
निवृत होन हित कैसे नाही ॥ करन विचार अवश्य सदाही ३९
कुल क्षय तें कुल धर्म सनातन। नाशहि प्राप्त होइ इन बातन
धर्म नशे कुल सर्व अधर्मा। आपन वश कर लेय कुकर्मा ४०॥
सो०-होंय दुष्ट कुल नारि, कृष्ण अधर्महि के बढे ॥
नारि दोष निर्धारि, होंय वरणसंकर सबै ॥ ४१ ॥
चौ०-कुल संकर कुल नाशन हारे। नरक हेतु ही जन्महि धारे
पतित होंय इन पितर कन्हाई। क्रिया पिंड जलविन ह्वै जाई ४२
भगवन् वर्ण संकरन करता। कुल घाती इन दोष न धरता ॥
शाश्वत[6] जाति धर्म कुल धर्मा। नाशत सर्व धर्म यह कर्मा ४३
जिन पुरुषन कुल धर्म विनासा। अवध रहित तिन नर्क निवासा
अहो जनार्दन ऐसी भांता। गुरुमुख श्रवण कीन्ह हम बाता ४४
बडा खेद आश्चर्यहि भारी। महत[7] पाप हम करन विचारी ॥
हम सुख राज्य लोभ मन आनी। तातें स्वजनन मारन ठानी ४५
सो०-अप्रतिकार[8] अशस्त्र, हनें हमें धृतराष्ट सुत। यदि रणविच
धरशस्त्र, क्षेमरूप[9] अति हनन सो ॥४६॥ हे राजन रथ माह, जा
बैठा अस वचन कह। शोक युक्त नर नाह, कर तें डारे शर धनुष॥

इति प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

---

१ विष्णु भगवान. २ खुशी. ३ छे प्रकारके होते हैं अर्थात् अग्नि लगाना, विष देना, शस्त्रपात करना, दूसरेका धनस्त्री भूमि अन्यायसे लेलेना इन ६ कर्म करनेवालेको आततायी कहते हैं. ४ फसाहुआ. ५ नाश. ६ अनादि. नित्य. नाशरहित. ७ बडा ८ असावधान ९ हितरूप.

द्वितीय अध्याय ।

दोहा०—"या दुसरे अध्याय में, वासुदेव भगवान ।
शोक युक्त लख अर्जुनहि, कीना सांख्य बखान ॥
विद्या ब्रह्म प्रकाश कर, समझाकर बहुभांति ।
लक्षण सुस्थित प्रज्ञके, कहे लहै नर शांति" ॥

चौपाई

सं·उ·उक्त[1] कृपा[2] तैं व्यापत अर्जुन।प्राप्त विषाद[3] हि हे राजन सुन॥
अश्रुपूर्ण[4] आकुल[5] जिन नयना । लख मधुसूदन बोले बयना १॥
श्री·भ·उ·अर्जुनविषम[6] समय लखनेतू।कश्मल[7] प्राप्तभया किहिहेतू
श्रेष्ठ पुरुष नहि सेवित[8] सोई । स्वर्ग विरोधी[9] कीरति[10] खोई ॥२॥
क्लीब[11] पना मत पार्थ दिखाऊ । तुम में यह बन सकतन भाऊ ॥
क्षुद्र[12] हृदय दुर्बलता[13] छाडो । अहो परंतप[14] उठि हो ठाडो ॥३॥
अ·उ·हे मधुसूदन हे अरि सूदन[15] । भीषम द्रोण योग हैं पूजन ॥
तिन ऊपर रणभूमि मझारा ॥ का विधि करि हौं बाण प्रहारा[16]४॥
सो०—भिक्षा भोजन नीक, हे भगवन या लोक में ।
गुरू हनन नहि ठीक, है प्रभाव[17] जिनका बडा ॥
इन गुरुओं को मार, अर्थ काम में लिप्त जे ।
याही लोक मझार, भोगें सुख लोहू सने ॥५॥
चौ०—भिक्षा रण इन दोउन माहीं । धर्म श्रेष्ठ का जानत नाहीं ॥
युद्ध प्रवृत[18] हू भए दिखावे । हार जीति जानी नहि जावे ॥

---

१ पहले अध्याय में कहा हुआ २ दया ३ शोकरूप चित्तका व्याकुलीभाव ४ आँसू ५ वस्तुकेदर्शनकी असामर्थता ६ संकट ७ मोह ८ उपासित ९ वैरी १० सराहना सुयश ११ हिजडापन १२ तुच्छ १३ कचाइ १४ परंशत्रुंतापयतीति परंतपः अर्थ यह अपने शत्रुओंकोजो संतापकी प्राप्ति करै ताकानाम परंतपहै १५ शत्रुरूप अरियोंको हनन करने वाला १६ मारना १७ तेज बल १८ करनेमें.

जिन बांधवन संहार जनार्दन । हम नाहिं चाहत जीवन धारन ॥
ते भीष्मादिक बाँधव सारे । सन्मुख ठाडे भये हमारे ॥६॥
कार्पण्य[1] दूषणे[2] आघेरा[3] । मलिन स्वभाव भया है मेरा ॥
धर्म मझार मूढ मम चित्ता । पूछत तुमहि बतावो मित्ता ॥
यातैं जो निश्चित वैर[4] होई । हम प्रति कथन करो तुम सोई ॥
शिष्य तुम्हार शरण में आया । शिक्षा करो हमें यदुराया ७

सो०—मोर इन्द्रियन शोषँ, करने हारे शोक कों ।
दूर करै यह दोष देखत नाहि ता श्रेय[5] कों ॥

चौपाई.

बंधुन रहित युक्त धन धाना । भूमि विषे अस राजहि पाना ॥
तथा देवतन अधिपति होऊ । देखत नहीं श्रेयता तोऊ ॥ ८ ॥
सं.उ.अस काह हृषीकेश तैं राजन । गुडाकेश सुपरंतप साजन ॥
मैं गोविंद न करूं लडाई । ऐसा कहि धारी चुपकाई ॥९॥
भारत दोऊ सेना मांही । शोक युक्त लख अर्जुन तांई ॥
हृषीकेश भगवान पियारे । हँसत हँसत अस वचन उचारे॥१०
श्री.भ.उ.नाही शोक करन यह योगू। अर्जुनशोक करत तिनलोगू
बुद्धिवंत सम वचन कहत हो । पर बिन समझे हठहि करत हौ॥

सो०—पंडित बंधुन माहि, प्रान युक्त अथवा रहित ।
शोक करत हैं नाहि, मुए जीयते का कछू॥११॥

चौ०—हम तुम यह सब नृप तन धारी। कबहुन होतेभए अगारी
हे:अर्जुन अस कहा न जाई । आगे किंतु भए सब आई ॥
तथा सर्व हम आगे ताता । हूं हैं नहीं नहीं असबाता ॥
किंतु सर्वहम आगे प्यारे । हूं हैं असनिश्चय मन धारे ॥१२॥

---

१ कृपणता २ ऐब ३ मैला उदास घबराया हुआ ४ श्रेष्ठ ५ सुखाना ६. उपाय ७ मालिक ८ भला ९ यहां भारतसम्बोधन धृतराष्ट्र के लिये है.

आतम देही देह मझारी । बाल जुवा वृद्धापन धारी ॥
तैसे अन्य देह हू पावै । मोह न धीर पुरुष उपजावै ॥ १३ ॥
भारत इन्द्रिय विषय बयारी । आवै जाय न थिरता धारी ॥
शीत उष्ण अरु सुख दुख आए । सहन करो तिन कुन्ती जाए १४
सो०-सुख दुख जाहि समान, अहो श्रेष्ठ पुरुषन विषे ।
धीर पुरुष सो जान, व्यथा न इन्द्रिय कर सकैं ॥

चौपाई.

ऐसा धीरपुरुष तनधारी । निश्चय मोक्षप्राप्ति अधिकारी ॥१५॥
असंत वस्तु संभवे न भावा । न संत वस्तु संभवे अभावा ॥
इन सत असत दुहुन कर अन्ता । देखा तत्त्व दर्शियन सन्ता १६
जिहि सत रूप फुरन यह सारा । दृश्य प्रपंच व्याप्त कर डारा ॥
तिहि तुम नाश रहित ही जानो । अपरिछिन्न सतरूप बखानो ॥
अपरिच्छिन्नहि परिछिन कोई । करन विनाश समर्थ न होई १७॥
नित्य विनाश रहित है जोई । रहित प्रमेय भावतैं सोई ॥
तथा शरीर उपाधी वाला । फुरै आतमा एक निराला ॥
सो०-एक आतमा जान, भारत सब देहन विषे ॥
नाशवान ते मान, या कारण तू युद्धकर ॥ १८ ॥

चौपाई.

कर्ता हनन आतमा जाने । हनन भया पुन जो नर माने ॥
उभय आतमा जान न पाई । हनन करे न हना हू जाई॥१९॥
जन्मत नहिं नाहिं मरत कदाचित । यह नहिं हो पुन उतपाति नाशित
अज नित्यःशाश्वतःपुराना । हने शरीर हना नहि जाना ॥२०॥
जानत जो याकों अविनाशी । अज अव्यय अरु नित्य प्रकाशी ॥
सो नर कोनहि भारत मीता । हनन करत पारथ किहि रीता ॥

---

१ पीडा २ देहादि ३ आत्मा ४ विभागरहित ५ जुदा टुकडा अर्थात् किसीमें समा सकता है ६ प्रमाण से सिद्ध ७उत्पत्ति रूप जन्मसे रहित ८ सर्वदा ९ निरन्तर १० अनादि ११ घटन बढनसे रहित.

सो नर को नहि हनन करावै। कबहु न मरत न मारा जावै ॥
जैसे नर पट[1] जीर्ण[2] बिहाई। धारत वस्त्र नवीन बनाई ॥ २१ ॥

सो०—जीर्ण शरीर विहाय, तैसेही यह जीवहू ॥
बहुर प्राप्त होजाय, नए शरीरनके विषे ॥ २२ ॥

चौपाई.

छेदै शस्त्र न अग्नि जलावै। क्लेदै[3] जल नहि वायु सुखावै ॥ २३ ॥
है अच्छेद्य[4] अदाह्य[5] सोई। है अक्लेद्य[6] अशोष्य[7]हि जोई ॥
अचल[8] सनातन[9] सर्वगत[10]ताई। नित्य[11] स्थाणु[12] आतम कहाई ॥२४॥
कहत अचिंत्य[13] वेद भगवाना। अविकारी[14] अव्यक्त[15] सुजाना ॥
ऐसा जानहु आतमा प्यारे। शोक करन नहि योग तुम्हारे २५
पक्ष अनित्य[16] विषे हू जाने। नित्य मरा जन्मा तू माने ॥
तोउ महाबाहो इन माही। शोकहि करन योग तू नाही ॥२६॥
जोजन्मतसोअवश्यहिमरता। मुआ अवश्य जन्म पुन धरता ॥

सो०—जन्म मरन रूपादि, भेट सकत कोऊ नहीं।
अर्जुन शोक विषाद, तू नहि करने योग्यहै ॥ २७ ॥

चौपाई,

आदि अंत अव्यक्त[17] शरीरा। मध्य व्यक्त[18] भारत मत धीरा ॥
ऐसे तुच्छ शरीरन माही। कर दुख जन्य प्रलापहु नाही ॥२८॥
कोइक आश्चर्यवत लखते। कोइक आश्चर्यवत कथते ॥
कोइक आश्चर्यवत सुनते। कोइक सुनकर हू नहि जनते ॥२९॥
सर्व देह नाशे हू भारत। आतमा कबहू नहीं विनाशत ॥

---

१ वस्त्र २ पुराने बोदे ३ सडावै ४ छेदा न जाय (सो क्यों अंगही नहीं) ५ जलाया नजाय ६ भिगोयानजाय गलायानजाय ७ सोखान जाय ८ चलनेसे रहित ९ आदि अंतसे रहित सर्वदा १० व्यापी ११ सर्वकालविषे विद्यमान १२ स्थिर १३ चिंतना जिसकी न होसकै १४ विकारसे रहित १५ इन्द्रियोंकरिके अगोचर १६ नाशवान १७ प्रतीत न होना १८ प्रतीत होना.

नियत वार्ता यह तू जानी। शोक योग नहि सकल पिरानी ॥३०
देख भाल निज धर्म लडाई । अर्जुन मत विचलित होजाई ॥
क्षात्रिय धर्म युद्धतैं आना । साधन श्रेय नहीं विद्माना ॥३१॥

सो०–विन प्रयत्न ही पार्थ, रहित तथा प्रतिबंधतैं।
साधन स्वर्गहि स्वार्थ, या प्रकारके युद्धको ॥

चौ०–प्राप्त होंय जे क्षत्रिय राजे।पावैं ते सुख सकल समाजे ३२
तू यह धर्म रूप संग्रामा । नहीं कदाचित करिहौ कामा ॥
तो निज धर्मरु कीर्ति बड़ाई। परित्याग कारि पाप बढ़ाई॥३३॥
तथा तुम्हार अकीर्ति वखानी । दीर्घकाललौं भूत पिरानी ॥
संभावितको अपजश जोई । अधिक मरन तैं जानहु सोई ३४॥
महारथी यह तुमहि सयाने । भयतैं रणतैं लौटा जाने ॥
बहु गुण युक्त भए जिनआगे । लाववता पावो रण त्यागे३५॥
तव वैरी दुर्योधन आदिक । निंदहिंगे सामर्थ स्वभाविक ॥

सो०–जे अन कहनी वात, तेरेकों सब कहहिंगे।
कहा अधिक दुखतात, है अर्जुन ताके परे ॥ ३६ ॥

चौ०–जो कदापि तू मारा जावै । तो कन्ती सुत स्वर्गहि पावै॥
भोगे पृथ्वी जो जीते तू । तातें निश्चय उठि रण हेतू ॥ ३७ ॥
सुख दुख लाभ जयाजय हानी।करो तुल्य रण पाप न आनी३८
सांख्य बुद्धि यह तोहि सुनाई । आतम तत्त्व नीक जहं गाई ॥
अब में बुद्धि योग बतलाऊँ । कर्मन माहि मोह बिसराऊँ ३९
यह निष्काम धर्म यत्किंचित । करत बड़े भय तैं हू रक्षित ॥
प्रत्यवाय नहिं होवै सोई । याको अभिक्रम नाश न होई ४०
जे नर करत कर्म निष्कामा । हे कुरुनंदन ते सुख धामा ॥

सो०–चाहत निश्चयवंत, आतम विवेचक बुद्धि इक।
उन बुधि शाख अनंत, जिनके निश्चय नाहिंने ४१॥

---

१ नियमानुकूल २ चलायमान ३ जाहिर. ४ वंधन ५ समर्थवान्
६ ओछापन ७पाप विन्न ८ फल रहित कर्म.

चौ०—हे पारथ सो हीन विचारा । जो पुष्पित[1] वाणी विस्तारा
विन जाने रमणीक[2] सुवानी । जन्म कर्म फल दाता जानी ॥
भोगैश्वर्य प्राप्त हितकारी । कर्महि पालन करने हारी ॥
कथन करत असवानी जेई । हीन विचार कहावत तेई ॥
प्रीतिमान वेदार्थन माही । मानहि कर्म ज्ञान फल नाही ॥
कामरूप अस कथन करत हैं । स्वर्ग परम पुरुषार्थ धरत हैं ॥
भोगैश्वर्य विषे आसक्ता । तिहितैं विचलित चित अनुरक्ता[3] ॥
अस नर अंतःकरण मझारी। कबहुक निश्चल बुधि चित धारी
४२, ४३, ४४.

सो०—कर्मकांड रुपवेद, करत विषय त्रैगुण्यको ।
हे अर्जुन सुनभेद, होउ रहित त्रैगुण्य तैं ॥
द्वंद्व धर्म मत मान, नित्य सत्त्व में थित रहो ।
हूजे आतम वान, योग[4] क्षेम तैं रहित हो ॥ ४५ ॥

चौ०—जैसे वापी[5] कूप[6] तडागा[7] । न्हान पान जल देइ विभागा॥
एकहि महा सरोवर[8] राजा । सारत अर्जुन सब जल काजा ॥
तैसे सर्व वेद अनुसारा । काम्य कर्मजे करने हारा ॥
गर्भ हिरण्यलोक पर्यंता । जितने आनद पावत संता ॥
ब्रह्मवेत्ता ब्रह्महि पावै । तितने सब आनंद उठावै ॥ ४६ ॥
कर्म विषे हो तव अधिकारा । फलन विषे न कदाच[9] तुम्हारा॥
मतना बनो कर्म फल हेतू । करो न प्रीति अकर्मन सेतू ॥४७॥
योग[10] स्थित फल इच्छा त्यागो । सिद्ध असिद्धहि[11] समता[12] पागो[13]

सो०—कारि विचार यह बात, करो धनंजय कर्मको।
योग कहावे तात, हर्ष शोक तें रहित पन ॥ ४८ ॥

---

१ स्वर्गादिक फलबतानेवालीवाणी २अच्छी सुन्दर मनको लुभानेवाली ३ अतिप्रीति ४ पूर्व अप्राप्त अन्न वस्त्रादिक पदार्थोंकी प्राप्तिका रक्षण ५वावडी ६कुआ ७तालाब ८बडा तालाव ९कभी १०चित्तकी वृत्तियोंका निरोध ११फलकी प्राप्ति अप्राप्ति १२बराबरी तुल्यता १३ दृढकरो,

चौपाई.

अर्जुन बुद्धि योग निष्कामा । दूरी करिकें अधम सकामा ॥
लीजे शरण बुद्धि ही माही । फल चाहत ते कृपण[1] सदाही ४९
बुद्धि युक्त इन कर्म मझारी । पुण्य पाप जिन उभय बिसारी ॥
योग हेतु हो उद्यमकारी । योगहि कर्मन कुशल विचारी ५०॥
बुद्धि समत्व युक्त हो जोई । तज फल कर्म मनीषी[2] सोई ॥
जन्म रूप जिन बंध छुडाए । ते सब लोक अनामय[3] पाए ५१
अंतःकरण तोर जिहि काला । छांडे मोह कलिल[4] जंजाला ॥
सुने तथा जे सुन्ने योगा । विषय विराग अनन्दित होगा॥५२॥

सो०–सुन फल नाना भांति, संशयको प्रापत भई ।
बुद्धि तुम्हारी तात, निश्चल हो जिहि कालमें ॥

चौ०–तव परमात्मा देव मझारी। होय अचल तव बुधि सुखकारी
तव तू जीव ब्रह्म के सारे । ज्ञान विभेदहि पावे प्यारे ॥ ५३ ॥
अ.उ. प्रज्ञ[5] स्थित सुसमाधि लगाई । केशव लक्षण देउ वताई॥
तथा समाधीतें उठ सोई । का विधि भाषण करता होई ॥
का विधि इन्द्रिय निग्रह करता । का विधि विषयन माहि विचरता।
श्री.भ.उ. अर्जुन पुरुष समाधि लगावे । मनोकामना सवविसरावे
आतम तुष्ट आत्मा जोई । प्रज्ञ स्थित सुकहावे सोई ॥ ५५ ॥
हे अर्जुन मन जिन दुख माही । प्राप्त भया उद्वेगहि नाही ॥

सो०–तथा विषय सुखमाहि, निवृत भई जिनकी स्पृहा[6] ।
राग क्रोध भय नाहि, प्रज्ञ स्थित मुनि जानिये ॥५६॥

जिन सर्वत्र नेह कछु नाही । तँत तत प्राप्य शुभाशुभ माही॥
नही हर्ष नाही कछु द्वेषा । थिर प्रज्ञा हैं तासु नरेशा ॥ ५७ ॥

---

१ कंजूस २ आत्मसाक्षात्कारवाले ३ अविद्यादिकरोगोंसे रहित ४ विशेष ५ स्थिर बुद्धि ६ इच्छा ७ तिसतिस ॥

जिमि कच्छप भय तैं सब अंगा। लेइ समेट आप में संगा ॥
तिमि यह सर्व इन्द्रियन खैंचै। विषय वासना तैं मन ऐंचै ॥
ता विद्वान पुरुष की सबही। प्रज्ञा स्थित होवे हैं तबही ॥५८॥
ग्रहन करन बिच इन्द्रिय विषयन। है असमर्थ सुखा रोगी जन॥
शब्दादिकहि निवृत हो जावैं। विषय राग पर नांहिं मिटावैं ॥
पारब्रह्म के दर्शन पाए। राग हू स्थित प्रज्ञ मिटाए ॥ ५९ ॥
सो०—यतनहि करनेहार, पुरुष विवेकी के मनहि ।
बल कर करत विकार, इन्द्रिय अति बलवंत हैं॥ ६० ॥

चौपाई.

करि वश तिन सब भक्त हमारा। बैठे मन एकाग्र सम्हारा ॥
हैं वशिवर्त इन्द्रियां जाकी। थिर प्रज्ञा होवे हैं ताकी ॥ ६१ ॥
मन कर विषयन जो नर धावै। विषयन माहिं संग उपजावै ॥
काम संग तैं उपजा जानो। उतपति क्रोध काम तैं मानो॥६२॥
क्रोध भए सो मोह बढावै। भ्रंश[१] स्मृत सो मोह करावै ॥
भ्रंश स्मृत से बद्धि नसाई। विनसे बुद्धि पतित होजाई॥६३॥
विधेयात्मा[२] मन वश कीना। राग द्वेष सबही तज दीना ॥
बरतत इन्द्रिय विषयन माही। चित्त स्वच्छता[३] पाय सदाही६४
सो०—ता प्रसाद कों पाय, संन्यासी विद्वान के ॥
सबही दुख मिटजाय, चित प्रसन्न हो बुद्धि थिर॥६५॥

चौपाई.

जयतैं रहित होय जिन चित्ता। उपजत नहीं बुद्धि तिन भित्ता ॥
तथा अयुक्त मनुष्यन माहीँ। हो उत्पन्न भावना[४] नांहीँ ॥
रहित भावना शांति न आवै। शांति रहित सुख कहँतैं पावै ६६
लागरहीं निज निज विषयन में। कोइक इन्द्री तिन इन्द्रिन में॥

१ याद न रहना. २ मनके निग्रह वाला पुरुष. ३ पवित्रता. ४ श्रवण मनन रूप वेदांत विचार करिकै जन्य आत्म विषयक बुद्धि.

मनका करि अवलंबन[1] जोई। हरत बुद्धि ज्ञानी की सोई ॥
जैसे नौका है स्थित नीरा[2]। हरत तुरत प्रतिकूल[3] समीरा[4] ६७॥
महाबाहु इन्द्रिय ता कारण। विषयन तैं जिन कीन निवारण[5]॥
तिन सब इन्द्रिय निज वश होई। निश्चल बुद्धि कहावै सोई ६८

सो०—सर्व भूत निशि[6] जोय, तामें जागत संयमी ॥
भूत दिवस जो होय, सो निशि देखत हैं मुनी ॥६९॥

चौपाई।

सर्व नदिन जिमि सिंधु भराई। वर्षादिक नीरहु तहँ जाई ॥
अचल प्रतिष्ठित रहत सदाही। निज मर्यादा छांडत नाही ॥
नर तिमि जिन स्थित प्रज्ञ नरेशा। सर्व विषय तिन करत प्रवेशा
शांति मोक्ष सो मानुष पावै। इच्छा विषयी शांति गमावै७०॥
छांड सर्व कामना विकारा। हो निस्पृह[9] अरु निरहंकारा[10] ॥
सो त्यागी जन जहँ कहुं जावै। हो निर्मम[11] नर शांति जुडावै[12] ७१
यह जो ज्ञान तुमहिं बतलाया। ताहि ब्रह्मनिष्ठा[13] कर गाया ॥
या निष्ठा को पाकर प्रानी। मोहहि प्राप्त न होवत ज्ञानी ॥

सो०—यदि होवै यह ज्ञान, अंत, काल क्षण मात्रहू ॥
पावै पद निर्वान[14], यामें संशय नाहिने ॥ ७२ ॥

इति द्वितीय अध्याय समाप्त ॥ २ ॥ श्री कृष्णर्पणामस्तु ॥

१सहारा. २ जल. ३विरुद्ध. ४ पवन. हवा. ५ दूर. अलग. ६ रात. ७इन्द्रियों को और मन को वश में करनेवाला पुरुष. ८स्थापित. ९इच्छा रहित. १० अभिमान रहित. ११ ममता रहित. १२ छाती ठंढी करै. १३धर्म में तत्परता. १४मुक्ति-मोक्ष. लयहोना. कल्पित प्रपंच की निवृत्ती.

तृतीय अध्याय।

दो०—"या तृतीय अध्याय में, कर्म योग यदुराय।
कहा भक्त निज जानिकै, अर्जुन को समझाय।"

अ०उ०—चौपाई.

अहो जनार्दन कर्म तैं मानत। आतम बुद्धि श्रेष्ठ तुम जानत॥
तो केशव मम मन कस फेरत। काहे घोर[1] कर्म बिच प्रेरत १
मिले हुए वचनन की नाई। कहि मम बुद्धि मोह उपजाई॥
निश्चय करि कहु एकहि बाता। होवै मोइ मोक्ष की दाता॥२॥

श्री भ० उवाच।

अहो अनघ[2] यालोक मझारी। उभय[3] भाँति निष्ठा[4] विस्तारी॥
प्रथमहि शुद्ध चित्त निर्धारे। तत्त्व पदारथ जानन हारे॥
तिनकों ज्ञान योग करिवाई। ब्रह्म परायणता[6] बतलाई॥
लहैं सिद्धि योगी जन सारे। कर्म योग निष्ठाकर प्यारे॥ ३॥

सो०—भाव निकर्म[7] न पाय, बिन कर्मन के नर करे।
निष्ठा ज्ञान न आय, सन्यासहि तैं हूं विना॥ ४॥

चौपाई.

जिहि कारण ज्ञानी अज्ञानी। कदाचित्त क्षणमात्र सुप्रानी॥
कर्म करे बिन रहै न कोई। वे वस कर्म करैं सब कोई॥
प्रकृति[8] जन्य गुण सर्व कहावें। लौकिक[9] वैदिक[10] कर्म करावें॥५॥
कर्म इन्द्रियन संयम कीना। विषयन विषे चित्त निज दीना॥
सो मूढात्मा मिथ्याचारी[11]। निष्ठा ज्ञान सिद्धि नहिं धारी॥ ६॥
हे अर्जुन जो पुरुष विलोकै। ज्ञान इन्द्रियन मन तैं रोकै॥
कर्म इन्द्रियन करि निष्कर्मा। फल त्यागे पाले इन धर्मा॥
अशुध चित्त संन्यासी जोई। तातें अतिहि श्रेष्ठ नर सोई॥७॥

---

१ भयानक. हिंसारूप कर्म. २ पाप तैं रहित अर्जुन. ३. दो. ४. श्रद्धा. ५. निश्चय किये. ६. तत्परता. ७. कामना रहित कर्म. ८. स्वाभाविक. ९ सांसारिक जो संसार में प्रसिद्ध हो. जो लोक व्यवहार में आता हो. १० शास्त्र अनुसार. ११. असत्य आचारवाला.

सो०-नियत[1] कर्म कर मीत, कर्महि श्रेष्ठ अकर्म[2] तैं।
देह न निवहै रीत, बिन कीने तैं कर्मके ॥ ८ ॥

चौपाई.

यज्ञादिक जे कर्म बखाने। तज फल भगवत अर्पण जाने ॥
काम्य कर्म कर जन अधिकारी। बँधत कुंति सुत कर्म मँझारी॥
फल तज कर्म करो तुम मित्ता। भलीभाँति ता ईश निमित्ता[9] ॥
करि उत्पन्न प्रजा अधिकारी। वचन प्रजापति पुरा[3] उचारी ॥
करिकै यज्ञ ईष्टको[4] साधो। यज्ञहि कामधेनु[5] सम बाँधो ॥१०॥
करिके यज्ञ देव की सेवा। करो तुष्ट इन्द्रादिक देवा ॥
तासु अनंतर[6] देव समाजा। करैं तुमहिं संतुष्ट[7] सुकाजा ॥
कर संतुष्ट परस्पर[8] दोऊ। परम श्रेय को प्रापत होऊ ॥ ११ ॥
सो०-करिकै यज्ञ विधान, तुष्ट[10] भए यह देवता।
मन वांछित[11] भोगान, देवैं गे तुमरे तईं।
चौ०-देवन दिये भोग[12] सुखदाई। नहिं देकर तिन देवन ताई॥
आपहि भोगत है नर जोई। सो नर अवश चोरही होई॥१२॥
करत यज्ञ शेषहि[13] को भोजन। शिष्ट[14] पुरुष सब पापन मोचन॥
निज भोजन हित पाक[15] बनावैं। दुर[16] आचारी पापहि खावैं १३॥
उतपत जीव अन्न करवाई। उपजत अन्न मेह वर्षाई ॥
वर्षत मेह यज्ञके कीने। यज्ञहि जानो कर्म अधीने ॥ १४ ॥
कर्म वेद तैं उतपन जानो। वेद सु अक्षर[17] ब्रह्म तैं मानो ॥
नित्य[18] सर्वगत[19] ब्रह्महि जानी। यज्ञ विषे स्थित हैं जग खानी[20] १५॥

---

१ नित्य नैमित्तिक कर्म. २ कर्म न करनेसे. ३ कल्पके आदि. ४अपना देवता. ५ सर्व कामनाओं को देनेवाली गौ. ६ पीछे. ७प्रसन्न. तृप्त. ८ एक दूसरे को. ९ शास्त्र में कहीहुई रीति. १० तृप्त. सन्तुष्ट ११ चाहा हुआ. इच्छित. १२ खाना प्रसाद. हर्ष. विलास. १३ बचा. हुआ. १४ अच्छे लोग. १५ भोजन की सामग्री. १६ बुरे चलन वाला. १७ जिसका नाश न हो. अविनाशी. १८ सर्वदा. १९ सब जगह जाने की ताकत. २० घर. खदान.

सोरठा–हे पारथ सुन बात, चक्र फिराया या विधी ।
जो न करै जाहि भाँति, सो नर जानो पातकी[1] ॥

चौपाई.

तिन आयुर्बल है पापी धन । इन्द्रियं[2] राम व्यर्थहि जीवन १६ ॥
आत्मरतिः[3] पुन जो नर होवै । तथा आत्म करि तृप्ती जोवै ॥
हो संतुष्ट आतमा माहीं । ताहि कार्य कछु करना नाहीं १७ ॥
ताहि कर्म करि नहीं प्रयोजन । नहीं अर्थ जग कर्म विमोचन
सर्व भूत बिच याकों कोई । नहिं हित साधक इच्छित होई ॥ १८ ॥
तू ता हेतु[4] विहित[5] सब कर्मा । फल तज सदा करो निज धर्मा ॥
करत भया कर्मन निष्कामा । पावै पुरुष मोक्ष सुख धामा १९ ॥
कर्म योग जनकादिक कीना । तातैं ज्ञान सुनेष्ठा लीना ॥
सो०–सुन अर्जुन यह बात, लोक प्रवृत्ती[6] के निमित[7] ।
तो हू तुम कों तात, कर्म करन ही योग्य है ॥ २० ॥

चौपाई.

जो जो कर्म श्रेष्ठ जन करते । सो सो अन्य पुरुष अनुसरते ॥
करत प्रमाण[8] श्रेष्ठ जन जाकों । अन्य पुरुष हू मानत ताकों २१ ॥
नहीं पार्थ त्रैलोक मझारी । किंचित[9] करने योग विचारी ॥
अन पायाहु पावना नाहीं । तोउ कर्म हम करत सदाहीं ॥ २२ ॥
अहो पार्थ जो मैं यह धर्मा । आलश छांड़ करूं नहिं कर्मा ॥
मोर मार्ग ही सर्व प्रकारा । अंगीकार करैं जन सारा ॥ २३ ॥
करूं कर्म नहिं हो जग नासा । होय वर्ण शंकर कर वासा ॥
मैं तिन सब का कर्ता ठैरा । हनूं प्रजाहि दे त्रास घनेरा २४ ॥
सो०–जैसे मूरख लोग, भारत फल आसक्त हो ।
करत कर्म संयोग, तैसे ही विद्वान नर ॥

---

१ पापी. २ इन्द्रियों विषे रमण करने वाला पुरुष. ३ आत्मा विषे प्रीति वाला. ४ कारण. ५ वेद अनुसार. ६ किसी काम में लगाना. ७ हेतु. ८ निश्चय. ९ कुछ. कुछेक.

चौ०—तज फल इच्छा कर्म सचेतू[1] । करैं लोक संग्रह[2] के हेतू २५॥
जे कर्मन संगी अविवेकी । तिन बुधि भेद न करैं विवेकी ॥
किंतु पूरवक आदर माना । सबही कर्म करत विद्वाना ॥
जे अविवेकी पुरुष कहावैं । तिन हू कर्मन माहिं लगावैं ॥ २६॥
हैं प्रकृतिहि गुण सर्व प्रकारा । तिन यह सर्व कर्म विस्तारा ॥
मूढ़ पुरुष आपन को जाने । अहंकार तैं कर्ता माने ॥ २७ ॥
महा बाहु गुण कर्म विभागा । तत्त्व वित्त[3] जानत अनुरागा[4] ॥
वर्तत इन्द्रिय विषयन माही । मैं कर्ता नहिं दूषित[5] नाहीं ॥२८॥
सो०—गुण प्रकृति सों मूढ़, जे अकृत्स्नविद[6] पुरुष हैं ।
गुण कर्मन आरूढ़, ज्ञानी विचलित[7] ना करै ॥ २९

चौपाई.

करि अध्यात्म चित्त[8] सब कर्मन । ईश जान मो माहिं समर्पन॥
छांड़ ममत्व[9] होउ निष्कामा[10] । तज कर शोक करो संग्रामा[11]॥३०॥
मम वचनन में श्रद्धावंता[12] । सदा रहत हैं अनसूयंता[13] ॥
मम मत यह करते स्वीकारा । तेहू करत कर्म निर्वारा[14] ॥ ३१॥
पुन जे नर या मतहिं हमारे । दोष लगा नहिं मानत प्यारे ॥
दुष्ट चित्त ते नष्टहि जानो। सर्व ज्ञान बिच मूढ़ बखानो॥३२॥
ज्ञानवान हू चेष्टा करते । निज प्रकृति अनुसार विचरते ॥
निज प्रकृति वश सब जग जानी।कहा करै मम निग्रह[15] प्रानी३३
सोरठा—वसत द्वेष अरु राग, इन्द्रिय इन्द्रिय विषय में ।
तिन वश नाहीं लाग, यह प्रानी के शत्रु हैं ॥३४॥
चौ०—आपन धर्म न नीका होई । अंग हीन हू भल है सोई ॥
अरु परधर्म नीक हू माहीं। सांगोपांग[16] करो भल नाहीं॥

---

१ चैतन्य होकर. २ लोगों को धर्म विषे लगाना अरु अधर्म से बचाना ३ यथार्थ स्वरूप को जानने वाला विद्वान पुरुष. ४ खुशी. ५ निंदित. ६ अनात्म वेत्ता. ७ चलायमान. ८ आत्मा अनात्माके विवेकवाला चित्त. ९ मेरापन. १० कामना रहित. ११ लडाई. १२ विश्वास करनेवाला. १३ किसी पुरुष के गुणों विषे दोषों का प्रगट न करना. १४ दूर. १५ रोक. मर्यादा. १६ सर्व अंग संयुक्त.

मरन भला निज धर्म मझारी। अन्य धर्म जानो भयकारी३५
अ.उ.—वार्षणेय[1] या जन मन माहीं। पाप करन इच्छा कछु नाहीं॥
बलकर प्रवृत करे की नाई। किहि के प्रेरे पाप कराई॥३६॥
श्री.भ.उ.-रजगुण काम क्रोध उपजाई।कामहि मार्ग अनर्थ लगाई
कामहि क्रोध रूप विस्तारा। रजगुण तैं उत्पत्ति विचारा॥
अतिहि उग्र[2] अरु महा अहारी। जानो अरि[3] यह जगत मझारी३७
सो०—अग्निहि धूम[4] छिपाय, गर्भ जरा[5] तैं ढकत जिमि।
दर्पण मैल जमाय, ज्ञान काम आवृत्त[6] तिमि॥ ३८॥

चौपाई.

काम जु आवृत कीन सुजाना। नित्य हि वैरी जन विद्वाना॥
अर्जुन तृष्णा रूप कहाई। सदा अतृप्त[7] अग्नि की नाई॥ ३९॥
इन्द्रिय मन बुद्धी यह तीनो। अधिष्ठान[8] याके तुम चीनो॥
काम ज्ञान इन तीन ढकाया। मोहित जीव देह अपनाया॥४०॥
अर्जुन आगेही ता कारण। करि वश इन्द्रिय काम निवारण[9]॥
नाशत ज्ञान[10] और विज्ञाना[11]। मूल भूत सब पाप निधाना[12]॥४१॥
देह परे इन्द्रियां कहावैं। मन को तिन तैं परे बतावैं॥
मन तैं परे बुद्धि तुम जानो। बुद्धिहि परे आत्मा मानो॥४२॥
सो०—आत्म देव या भांति, परे बुद्धि तैं जानकर॥
करि मन को थिर शांति, निश्चय रूपी बुद्धिकर॥
महाबाहु यह काम, इच्छा तृष्णा रूप है।
दुरासदरु बलधाम, नाश करो या शत्रुको॥ ४३

इति तृतीय अध्याय समाप्त॥३॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु॥

---

१ वृष्णवंशी. २ अतृप्त. ३ वैरी. ४ धुँआ. ५ झिल्ली जिससे बालक गर्भ के बीच में ढका रहता है. ६ ढाकता है. ७ कभी संतुष्ट नहीं. ८ स्थिति. कयाम. मुकाम. ९ दूरकरो. १० जानना. बोध बुद्धि. समझ. विज्ञता. गुरु शास्त्रके उपदेश से उत्पन्न भया आत्मा का परोक्ष ज्ञान. ११ परोक्ष ज्ञान का फलरूप आत्मा का अपरोक्ष ज्ञान. १२ घर. जगह.

चतुर्थ अध्याय।

दोहा-"परमेश्वर सब जगत कों, प्रकटत अरु बिनसात।
तत् अरु त्वं पद अर्थका, भेद किया प्रख्यात[1]॥
अर्जुन के समझान हित, ऐसे श्रीयदुराय।
करत प्रशंसा[2] कर्म की, या चतुर्थ अध्याय॥"

चौपाई.

श्री.भ.उ.-नाश रहित यह योग ज्ञाना।प्रथम सूर्य को मैंहि बखाना
रवि ने निज सुत मनुहि बताया। तिन इक्ष्वाकू पुत्र सुनाया १॥
परमपरा प्रापत यह योगा। जानत भये राजऋषि लोगा॥
ऐसे योग परंतप पाया। दीर्घ[3] काल बीते सुनसाया॥ २॥
सोई ही यह योग पुरातन। जान भक्त मम सखा सनातन[4]॥
तब हित कथन करा यह काला। यह उत्तम अति गोप्य[5] विशाला ३
अ.उ.आप जन्म तो अबही धारा। सूर्य जन्म तो पूर्व[6] विचारा॥
प्रथमहि कहत भए तुम ताता[7]। निश्चय का विधि हो यह बाता ४
श्री.भ.उ.सो०-बीते हैं बहु बार, तेरे अरु मेरे जनम।
हूं जानत निर्धार[8], अर्जुन तू जानत नहीं॥ ५॥

चौपाई.

जन्म मरन तैं रहित प्रकाशी। ईश्वर सर्व भूत अविनाशी॥
तदपि आपनी माया द्वारा। यथा समय लेवत अवतारा ६॥
जब जब होत धर्मकी हानी। भारत तथा अधर्म बढानी॥
मैं परमात्म देव तिहि काला। करूं देह उत्पन्न विशाला॥७॥
साधु जनन की रक्षा कारन। पापी दुष्ट मनुष्यन मारन॥
धर्म स्थापन करन हमारा। युग युग विषे होत अवतारा॥८॥

१ जाहिर. २ तारीफ. बडाई. ३ बहुत समय. ४ सदैव. हमेशा. ५ छिपा हुआ, ६ प्रथम. आगे. ७ भाई. ८ निश्चय.

जन्म कर्म मम दिव्य यथारथ[1]। जानत अस जो जन सुकृतारथ[2]॥
देह छांड़ पुन जन्म न पावै। अर्जुन मेरे माहि समावै॥ ९॥
सो०–राग क्रोध भय दूर, चित्त लगाकर मो विषे।
लई शरण भरपूर, ज्ञान रूप तपःकरि पुरुष॥
चौ०–अस निष्पाप भए बहुतेरे। प्राप्त कीन्ह मम भाव[3] घनेरे १०
पार्थ भजत नर मोकों जैसे। करू अनुग्रह[4] मैं तिन तैसे॥
कर्म धिकारी सर्व प्रकारा। करैं अनुसरन मार्ग हमारा॥ ११॥
जे कर्मन फल इच्छा धारी। पूजें देवन लोक मझारी॥
मनुष लोकमें कामी धावैं। कर्म जन्य फल तुर्तहि पावैं॥ १२॥
चार वर्ण गुण कर्म विभागा[6]। मैं सिरजे न मोहिं अनुरागा॥
हूं मैं तिन वर्णन का कर्ता। जानो अव्यय रूप अकर्ता॥ १३॥
लिपे न कर्म न फलमें चाहत। अस मो लखे न कर्म बँधावत १४
सो०–अहंकार विसराय, किये कर्म बंधन न हो।
मुमुक्षु पूरव लाय, करे कर्म अस जानकर॥
चौ०–तिन तैं पूर्व युगांतर माहीं। कीने कर्म मुमुक्षु सदाही॥
हे अर्जुन तूभी ता कारण। करो कर्म[10]कोंही मन धारण॥ १५॥
कहा अकर्म कर्म का होई। बुद्धि मान हू यामें मोही॥
ताते कहत कर्म तुम ताई। जाहि जान जग तैं तर जाई॥ १६॥
कर्म[10] विकर्म[11] अकर्म[12] सबन का। तत्व जानने योग इननका॥
अर्जुन कर्मनकी गति[13] न्यारी। सो अति ही दुर्बोध[14] विचारी १७
कर्मन माहि अकर्म लखाई। लखै अकर्म कर्मकी नाई॥
सर्व मनुष्यन सो बुधिवंता। योग युक्त सब कर्म करंता॥ १८॥

---

१ ठीक. २ जिसने अपना प्रयोजन पूरा किया हो. ३ मत. गुण स्वभाव. ४ कृपा. ५ चलैं ६ जुदा जुदा. ७ मोह प्रीति. ८ अविनाशी. ९ मुक्ति चाहने वाला. १० वेदोक्त फलकी वांच्छाविना ईश्वर अर्पण करै सो कर्म कहिये. ११ वेदोक्त फलकर्म फल निमित्त अध्यास संयुक्त करै सो विकर्म कहिये. १२ वेदोक्त विरुद्ध करै सो अकर्म कहिये. १३ रीति. राह. १४. कठिन समझ में न आवै.

सो०-जिनके सबही कर्म, रहित काम संकलप तैं ॥
ज्ञान अग्नि करि भस्म, बुधि जन पंडित कहत तिन १९॥
चौ०-करि परित्याग कर्म फल संगा। नित्त्य निराश्रय[1] तृप्त[2] निहंगा[3]
कर्म प्रवृत हू जन विद्वाना। किंचित मात्र न करत सुजाना २०॥
निराशीहि[4] चित आतमा जीते। सर्व परिग्रेह[5] त्यागे हीते॥
केवल देह कर्म अनुरागे। ताकों पाप कछू नहिं लागे ॥ २१ ॥
यथा लाभ संतोषी होई। द्वंद्वातीत[6] विमत्सर[7] सोई ॥
सिद्धि असिद्धी माहि समाना। कर्म करे हू नाहिं बँधाना २२॥
फल अभिलाष रहित है चित्ता। मुक्त रूप ज्ञान स्थित नित्ता॥
यज्ञ हेतु कर्मन लौ लाई। ते फल सहित लीन होजाई ॥ २३॥
सो०-अर्पन ब्रह्महि जान, ब्रह्म अग्नि आहुति[8] हवी[9] ॥
कर्म समाधी ठान, ब्रह्महि माहि समात सब ॥ २४ ॥
चौ०-दूसर कर्मी पुरुषन माही। दैव यज्ञही करत सदाही ॥
अपर[10] ब्रह्म अग्नी बिच ज्ञानी। होमत आतम आतमा जानी २५
श्रोत्रादिक इन्द्रिन कों कोई। संयम रूप अग्नि विच धोई ॥
शब्दादिक विषयन आचारी। यजतैं[11] इन्द्रियन अग्नि मझारी २६
सर्व इन्द्रियन कर्मन कोऊ। अरु प्रानन के कर्मन सोऊ ॥
होमत संयम आत्म सुजाना। योग अग्नि दीपित करि ज्ञाना २७
द्रव्य यज्ञ तप यज्ञहि करते। योग यज्ञ कोई चित धरते ॥
ज्ञान यज्ञ मख[12] वेदा भ्यासा। यती सुतीक्षण[13] व्रत परकासा ॥२८॥
सो०-कोई पुरुष पिरान, होमत बीच अपान के।
कोई पुरुष अपान, होमत बीच पिरान के ॥

---

१ विन आसरे २. संतुष्ट. ३ अकेला. ४ तृष्णा से रहित. ५ परिवार. ६ राग द्वेष से रहित. ७ ईर्षा रहित. पर सन्ताप से रहित. ८ मंत्र से देवताओं के लिये होम की सामग्री को आग में होमना. ९ घी तिल चावल आदि होम की सामग्री. १० दूसरे. ११ होमत. १२ यज्ञ. १३ अत्यंत दृढव्रत.

चौपाई.

प्राण अपान रोक गति कोई । प्राणायाम परायण होई ॥२९॥
मानुष दूसर नियत अहारी । होमत इन्द्रिन प्राण मझारी ॥
तिन यज्ञन कों करने हारे । कर मख मेटत पाप विकारे ३०॥
मख अवशेष अमृत को खावैं । यह सब नित्य ब्रह्म को पावैं॥
करे न यह मख कुरुसत्तम जिन।लोक न यह परलोक कहां तिन ॥३१॥
ऐसे यज्ञ सु बहुत प्रकारा । अर्जुन वेद माहि विस्तारा ॥
जानो कर्म जन्य तिन ताई। ऐसे जानि मुक्ति होजाई ॥३२॥
द्रव्य यज्ञ तैं यज्ञ ज्ञाना । अर्जुन अतिही श्रेष्ठ वखाना ॥
सो०—हे पारथ सुन बात, सर्व कर्म फल सहित जे ।
ज्ञान विषे ही तात, परि अवसानहि प्राप्त हों ३३ ॥
चौ०—ब्रह्मवेत्ता सुगुरु ढिग जाओ।करि प्रणाम तुम शीशनवाओ
तथा प्रश्न अरु करिकै सेवा । पाओ आत्मज्ञान करि भेवा ॥
ज्ञानी गुरू तुम्हारे ताई । ज्ञान तत्त्व का भेद बताई ॥ ३४ ॥
मोह न बहुर पायता जाने । सब भूतन निज आत्मा माने ॥
तैसे पांडव ज्ञान परखहै । बुद्धि भेद तज मो में लख है ॥३५॥
पापिन में यदि तू बड पापी । ज्ञान नाव चढि उतर तथापी ३६॥
जैसे प्रज्वलित अग्नि मझारी । अर्जुन काष्ठ भस्म करिडारी ॥
तैसे ज्ञान अग्नि अति भारी । डारत सबही कर्मन जारी ३७॥
सो०—पावन ज्ञान समान, विद्यमान नहिं लोक में ।
योग सिद्ध को ज्ञान, समय पाय हो अपन में ॥३८॥
चौ०—पावत ज्ञानहि श्रद्धावाना।तत्पर जित इन्द्रियनि सयाना॥
जबही आत्म ज्ञान आजावै । परा मुक्ति सो शीघ्रहि पावै ३९॥

---

१. तत्पर. २ दो भाग अन्न एक भाग जल चौथा भाग खाली. ३ बाकी. बचा हुआ अन्न. ४ अर्जुन. ५ लीन होवैं हैं. ६ जलती हुई ७ मौजूद. ८ लगा हुआ. ९ कैवल्य. सबसे उत्कृष्ट. अत्यन्त श्रेष्ठ.

मूरख श्रद्धा रहित विनाशा । संशय आत्मा स्वार्थ निराशा ॥
लोक नहीं परलोकहु नाहीं । नहिं सुख संशय आत्मा माहीं ४०
योगहि धार तजे जिन कर्मा । आत्मज्ञान करि छूटे भर्मा ॥
आत्मवंत नर कर्मन माही । अहो धनंजय बंधत सुनाही ४१॥
भया जु संशय निज अज्ञाना । रहा हृदय माही ठिहराना ॥
हे भारत याको ता कारण । ज्ञान खड्ग से करो निवारण ॥

सोरठा—करो कर्म निष्काम, या कारण यह काल तुम ।
हे भारत बल धाम, युद्ध हेतु उठि हो खड़ा ॥४२॥

इति चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

पञ्चम अध्याय।

दोहा—"या पञ्चम अध्यायमें, कर्म तथा सन्यास।
उभय योग विच पार्थके, कर संदेह विनास।
यती पुरुष की मुक्ति का, कथन करा भगवान।
दास कन्हैया कहत सो, धर गुरु चर्णन ध्यान"।

अ·उ. चौ०-कबहु कर्म सन्यास[1] बताओ। कबहू कर्म योग दर्शाओ
निश्चय करि कहु एकहि मोई। कृष्ण उभयमें शुभ हो जोई १॥
श्री·भ·उ. अर्जुन कर्मयोग सन्यासा। कारण मोक्षउभय सुखरासा
तदपि कर्म सन्यास तें मानो। कर्म योग ही उत्तम जानो॥२॥
नहीं द्वेष नाहिं इच्छा करते। द्वंद्व धर्म तैं रहित विचरते॥
महा बाहु ते नित सन्यासी। सुख पुर्वक बंधन छुट जासी॥३॥
कर्मयोग सन्यासहि जानत। मूरख पृथक न पण्डित मानत॥
करत एक हू भली प्रकारा। पावत दोउन का फल सारा॥४॥

सोरठा०—सांख्य पुरुष जहं जाय, योग पुरुष हू जात तहं॥
सांख्य योग इक भाय, सम्यक देखत सो पुरुष५॥

चौ०—कर्मयोग विन कर सन्यासा। महा बाहु पावत दुख वासा॥
योग युक्त सन्यासी होई। शीघ्र ब्रह्म को पावत सोई॥ ६॥
योग युक्त हो विशुद्धात्मा[3]। जितइन्द्रियानि[4] तथा विजितात्मा[5]॥
सर्व आत्म निज आतम जाने। करत कर्म नाहिं कर्म लिपाने७॥
योग सुयुक्त तत्ववित प्रानी। देखत सूंघत बोलत वानी॥
सुनत छुवत खावत अरु चालत। खोलत मीचत स्वास उठावत
सेन करत अरु त्यागत पकरत। इन्द्रिय निज विषयन में वर्तत॥

---

१ त्यागना. २ तैं. ३ रागद्वेष से रहित शुद्ध अन्तः करण वाला
४ इन्द्रियों की वाह्य वृत्तियों को वश करनेवाला. ५देह वश करनेवाला.

किंचित हू न करत अस मानत।या प्रकार ज्ञानी नर जानत८,९
सो०–कर्म करै फल त्याग, करि परमेश्वर समर्पण ।
ताकों पाप न लाग, जल मधि अम्बुंज पत्र इंव॥ १०॥
चौ०-फल कामन तज जन अधिकारी।अन्तःकरण शुद्धिहितधारी
केवल मन बुधि इन्द्रि शरीरा। करत कर्म कों ही मत धीरा ११
करि परित्याग कर्म फल युक्ता।सो योगी जन पावहि मुक्ता ॥
पुरुष अयुक्त कामना करते । फल आसक्त बंधमें परते १२॥
मन तें सर्व कर्म करि त्यागन। होत सुखी वशिवर्ती चित जन॥
या नव द्वार शरीर मझारा । रहत आत्मा देह नियारा ॥
करत करावत कार्य न कोई। या प्रकार करिकै स्थित होई १३॥
परमेश्वर देहादिक माही । कर्तृत कर्म वनावत नाही ॥
सो०–कर्मन फल संयोग, करत नहीं उत्पन्न वह ।
जीव प्रकृति के योग, होय प्रवृत्त सब कार्य में ॥१४॥
चौ०–काहु जीवके पुण्यरु पापा । ग्रहण करत नहिं ईश्वर आपा॥
पर अज्ञान ज्ञानको ढांकत । तातें जीव मोह कों पावत ॥१५॥
आतम ज्ञान पुनः जिन पाया । तिन पुरुषन अज्ञान मिटाया ॥
आत्मज्ञान सो रंवि की नाई । पारब्रह्मसु प्रकाश कराई॥१६॥
लगी रहत परमात्म मझारी । निष्ठा अरु सद्बुधि जिन प्यारी॥
तथा प्रयत्नहु ताहि निमित्ता । है आसरा उन्हींका मित्ता ॥
ताकी कृपा ज्ञान उर आवत ।पाप नाश करि मोक्षहि पावत१७॥
विद्या विनंय युक्त द्विज ज्ञानी।श्वपंच श्वांन गोगजं सम जानी १८
सो०–साम्य भाव निर्धार, जिनका मन सुस्थित भया ।
तिन जीता संसार, अर्जुन याही लोकमें ।

---

१ कमल. २ समान. ३ सूर्य. ४ नम्रता. ५ चांडाल. ६ कुत्ता. ७ हाथी ८ सिद्ध हुआ है.

सदा ब्रह्म निर्दोष समाना । तातैं ज्ञानी ब्रह्म वसाना ॥
प्रियहि पाय नहिं मन हर्षाई । अप्रिय पाय न शोक बढ़ाई ॥
निश्चल बुद्धि मोह विसराई । ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म समाई ॥ २० ॥
बाह्य विषय में नहिं आसक्ता । अंतर सुख जानत नर मुक्ता ॥
ब्रह्म योग युक्तात्मा होई । अक्षय सुख पावत नर सोई ॥ २१ ॥
इन्द्रिन के विषयन को भोगा । आदि अंतवत दुख संयोगा ॥
कुन्ती सुत तिन भोगन माही । बुधि जन प्रीति करत हैं नाही २२
काम क्रोध वेगहि थिरवंता । सहै शरीर नाश पर्यंता ॥
सो०—पुरुष जानिये सोइ, सोइ युक्त सोई सुखी ॥ २३ ॥
"समझावत मन तोइ, अब तो थिर होकर रहो" ॥
चौ०—अंतर सुख अंतर आरामा । अंतर्दर्शी जन सुख धामा ॥
सो योगी हो ब्रह्म स्वरूपा । पाय ब्रह्म निर्वाण अनूपा ॥ २४ ॥
चित एकाग्र युक्त सन्यासा । संशय रहित रु कल्मष नाशा ॥
सर्व भूत हित दया बढ़ावै । सो निर्वाण ब्रह्मको पावै ॥ २५ ॥
रहित क्रोध अरु काम विकारा । चित्तहि निग्रह करने हारा ॥
अस आतम दर्शी विद्वाना । जियत मरत ले पद निर्वाना ॥ २६ ॥
तज रूपादि विषय संसारी । भृकुटी मध्य दृष्टि निजधारी ॥
प्राण अपानहि रोक चलाए । नासा बीच समान फिराये ॥ २७ ॥
सो०—इन्द्रिय मन बुधि जीत, इच्छा भय क्रोधहि विगत ।
मोक्ष परायण मीत, सदा युक्त सो है मुनी ॥ २८ ॥
लोकन ईश महान, तप अरु यज्ञहि भोकता ।
सुहृद सर्व भूतान, पाय मुक्ति अस जान मुइ ॥ २९ ॥
इति पञ्चम अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

---

१ लीन होना. २ नाश रहित. ३ पाप. ४ रोकना. ५ भौंह. ६ नाक. ७ रहित. ८ मित्र.

षष्ठ अध्याय.

दोहा–"शुद्ध भयहु अन्तःकरण, नहिं केवल सन्यास ।
करत मुक्त बिन ध्यान के, तातें करत प्रकाश ॥
ध्यान योग वर्णन करत, हरि छठये अध्याय ।
कहत कन्हैया दास सो, कृष्ण चरण सिरनाय" ॥

श्री.भ.उ.–चौपाई ।

कर्म फलन नहिं इच्छा धरता । करन योग कर्मन कों करता ॥
नहि निराग्नि नाहि अक्रिय जोई । है सन्यासी योगी सोई ॥१॥
श्रुति सन्यास कहत हैं जाकों । योग रूप जानो तुम ताकों ॥
विन संकल्प त्याग नर कोई । हे पाण्डव योगी नहिं होई ॥२॥
आरुरुक्ष मुनि योग मझारी । कर्म साधना वेद उचारी ॥
योगारूढ भए मुनि ताई । अर्जुन साधन सम बतलाई ॥ ३ ॥
इन्द्रिय विषयन कर्मन माही । जब आसक्त होइ यह नाही ॥
तथा सर्व संकल्प विहाई । तव यह योगारूढ कहाई ॥ ४ ॥

सो०–यह समुद्र संसार, तातें निज जीवातमा ।
करै पुरुष उद्धार, करि विवेक संयुक्त मन ॥

चौ०–या संसार समुद्र मझारी । नीच योनि जीवात्म न डारी ॥
आत्मा आत्माहीका मित्र । आत्मा आत्माहीका शत्रु ॥ ५ ॥
जिहि आतम आतमको जीता । तिहि आतम आतम बँध मीता
अरु जिन आतम विषय अधीना । आपन वश कबहू नहिं कीना
तिन आतम शत्रुता मझारी । शत्रु तुल्यही है अपकारी ॥६॥
शीत उष्ण अरु सुख दुख आए । तथा मान अपमानहि पाए॥

१ अग्नि से रहित नहीं है अर्थात् अग्नि करिके सिद्धि होनेवाले अग्निहोत्रादिक श्रौत कर्मों के त्यागवाला नहीं है. २ क्रिया से रहित नहीं है, अर्थात् ता अग्नि की अपेक्षा से रहित स्मार्त क्रिया के त्यागवाला नहीं है. ३ योग विषे आरुढ होने की इच्छावान मुनि. ४ बुरा करने वाला. ५ सर्दी ६ गर्मी. ७ आदर. ८ निरादर.

है चित शांति जितात्मा सोई । वह परमात्म परायेण होई७॥
सो०—तृप्त ज्ञान विज्ञान, इन्द्रिय जित कूटस्थ सो ।
योगी युक्त बखान, सम कांचन डेलाँ उपल ॥ ८ ॥
चौ०-उदासीन सुहृदहि अरु मित्रू । द्वेष्य मध्यस्थ बंधु अरुशत्रू॥
साधुने पापिनें देखत प्रानी । तुल्य बुद्धि नर श्रेष्ठ बखानी ॥९॥
योगारूढ़ इकांत निवासा । जित चित आतमा कोइ न पासा ॥
आशा रहित अपरिग्रह होवै । चित्त समाहित सन्तत जोवै॥१०॥
करै पवित्र देश में आपन । निश्चल आसन ही कों थापन ॥
नाहिं अति ऊंचा नाहिं अति नीचा।हो मृगचर्म कुशा पट बीचा११
ता आसन पर बैठ सुमित्ता । जीत क्रिया इन्द्रिन अरु चित्ता ॥
आपन मन एकाग्र लगावै । आतम शुद्धि हित योग दृढ़ावै॥१२॥
सो०—धारै अचल समान, काय ग्रीव शिर थिर सुनर ।
पेखे नहिं दिशि आन, लखै अग्र निज नासिका॥ १३॥
चौ०--भय तैं रहित शांति उर धारी । ब्रह्मचर्य व्रत पद संचारी
कारि मन निग्रह मोमें चित्ता । होय युक्त मत्पर रहि मित्ता॥ १४॥
यह विधि योजितै कारि आपनमन।चित्त समाहित सो योगीजन ॥
मोर स्वरूप भूत निर्वाना। परम शांतिकों पाय सुजाना॥१५॥

---

१ लगारहना. २ संतुष्ट. ३ गुरूके उपदेशसे उत्पन्न भई शास्त्र उक्त पदार्थोंको विषयकरने वाली बुद्धि४ तिस बुद्धिके अनुभवसे समस्त पदार्थोंको तुच्छ समझ किसीकी इच्छा न रखनी केवल सुख स्वरूप आत्मा ही का साक्षात्कार करिके उसीमें शंतुष्ट रहना. ५ लुहारकी निहाई के अनुसार निर्विकार आत्मामें संस्थित. ६. सोना. ७ मिट्टी. ८ पत्थर. ९ जिसने संसार छोड़ दिया और जिसके मित्र और बैरी बराबर हों. १० प्रत्युपकारकी इच्छा रहित जो उपकार करै उसका नाम सुहृद है. ११ वैर ईर्षा. १२बिचवैया साक्षी. १३शास्त्रविहित कर्मोंको करनेवाला १४ शास्त्र निषिद्ध कर्मोंका करनेवाला. १५प्रतिबंध करनेवाले पदार्थोंसे रहित होना. १६मनको ईश्वरविषे लगाये रहना. १७ सदैव. १८ वस्त्र. १९इधर उधर न हो एक जगह ठहरा रहै. २० शरीर. २१ गर्दन. २२ नाक.२३ मुझको परम पुरुषार्थ जाने.२४ लगाकर.२५ स्थिर अचल ।

अर्जुन अति जागै अति सोवै । अति खावै अति भूखा होवै ॥
सो नहिं योग सिद्धि नर धारी । अरु जे युक्त अहार विहारा १६
युक्त चेष्टा कर्मन मांही । सोवन जागन नियम सदाही ॥
ते नर योग सिद्धिको पावैं । पाकर सबही दुख मिटजावैं १७॥
सो०—चित निरुद्ध जाकाल, होवे थित आतम विषे ।
विषयातीत विशाल, योग युक्त तासों कहत ॥ १८ ॥
चौ०—जिमि बिन पवन ठौरके माहीं । इत उत होत दीप लौ नाहीं
सो उपमा निज चित निर्धारा । योगाभ्यास बढावन हारा ॥
निश्चल करि चित को परवीना । ब्रह्म माहिं होवै लवलीना १९॥
चित निरुद्ध करि योगाभ्यासा । हो उपरम सु विशेष निवासा॥
तहां शुद्धि मन आतम निरखे । हो संतुष्ट आतमा परखे॥२०॥
जो सुख इन्द्रिन परे लखाई । अन्तर हित सद बुद्धि जताई ॥
जिन यह सुख जाना अधिकाई । ते नहिं आतम स्वरूप डिगाई२१
"बसत जिनन मन मुरलिबजैया । देत तिनन निजधाम कन्हैया"
सो०—अन्य लाभ तापाय, मानत नहिं तातैं अधिक ।
महा दुख हु न डिगाय, थित जाऽवस्था के विषे॥२२॥
चौ०—लेशमात्र दुख जामें नाहीं । योग जानिये ताहि सदाही ॥
निश्चय करि तामें चित दीजे । हो प्रसन्न अभ्यासहि कीजे ॥
चित उद्वेग[२] रहित हों लोगू । है अभ्यास करन तिन योगू२३॥
मन संकल्प कामना जेती । सहित वासना त्यागे तेती ॥
सर्व प्रकार समूह इन्द्रियन । करै निरोध रोकमन विषयन २४॥
धैर्य युक्त बुद्धी करि नीरै । कर निरोध मन धीरै धीरै ॥
कर मन लीन आतमा माहीं । चिंतत किंचित मात्रहु नाहीं२५
मन चंचल जित जित चलि जावै । विषयाकार वृत्ति उपजावै॥
सो०—तित तित तैं मन लाय, अर्जुन याको खैंच करि ।
आतम विषे लगाय, करि वशिवर्ती[३] मनहिकों ॥२६॥

---

१ शांति. २ दुःख. ३ अपने काबू में ।

चौ०—मन प्रशांत गुण रजो मिटाई। पापरहित गुण तमो विहाई॥
ब्रह्म रूप अस योगी ताई। सुख उत्तम प्रापत होजाई॥२७॥
कल्मष[1] विगत सदा योगीजन। आतम विषे लगावत निजमन॥
अपरिच्छिन्न ब्रह्म सुख रूपा। सुख तैं अनुभव करत अनूपा२८
योगयुक्त आतम कहलाई। सर्व विषे सम बुद्धि लखाई॥
सर्व भूत में आतमा है थित। आतमा माहिं भूत सब विस्तृत२९
मोकों सकल भूत में देखत। सकल भूत पुन मोंमें पेखत॥
वसत मे[2] तासु दृष्टि के माहीं। मो तैं छिपा रहत वह नाहीं॥
सो०—या प्रकार उर माहि। प्रकट होय ता पुरुष के॥
कृपा दृष्टि कर ताहि। करत कृतारथ क्षणिक में॥३०॥
चौ०—सर्व भूत बिच व्यापक मोई। एक भाव तैं भजता जोई॥
सब व्यवहार जगत के करता। तोहू वह मो माहिं विचरता३१
निज अनुसार जगत को जाना। सुख दुख सब के लखे समाना॥
अरु अर्जुन सब कर हित चाहत। सो योगी में श्रेष्ठ वखानत३२
अ.उ.मधुसूदन तुम योग बताया। शुद्ध चित्तसे सिद्ध लखाया॥
अधिक कालतक ताको धारण। लखत न मन चंचलता कारण३३
मन प्रसिद्ध यह कृष्ण सुजाना। दृढ चंचल प्रमाथ[3] बलबाना॥
निग्रह तासु समान समीरा। अतिहि कठिन में मानत वीरा३४
श्री.भ.उ.सो०—महा बाहु यह बात, मन चंचल निग्रह कठिन।
है बिन संशय तात, तोहू कुन्तीसुत सुनो॥
चौ०—करि अभ्यास और वैरागा। नीके पकरा जाय दुवागा३५
अर्जुन असंयतात्मा[4] लोगा। दुख करि हू पासकें न योगा॥

---

१ पाप रहित. २ में. ३ देह इन्द्रिय प्राण को जोरावरीसे क्षोभ करना. ४ अभ्यास और वैराग करिकै अंतःकरणको निरुद्ध न करना.

हमकों है संमत यह बाता । पर मन वश है जिन का ताता ॥
करै यतन बतलाया जोई । प्राप्त होनको शक्य है सोई ॥ ३६॥
अ.उ.अयतिः श्रद्धा युक्त कन्हाई । योग करन तैं मन विचलाई॥
तत्व ज्ञान फल नाहीं पावै । सो नर कोन गती कों जावै ॥ ३७ ॥
कर्म जनित स्वर्गादि नसाये । योग सिद्ध मोक्षहु नहिं पाये ॥
उभय भ्रष्ट छिन्नाभ्र कि नाई । महा बाहु नहि काहि नसाई ३८॥
सो०—यह संदेह हमार । कृष्ण निवारण कीजिये ॥
योग्य छेदने हार । तुम तैं अन्य न संभवै ॥ ३९ ॥

श्रीभ. उ. चौपाई ।

पार्थ लोक पर लोकहु माहीं । तासु विनाश कदाचित नाहीं ॥
शास्त्र विहितैं कारी जो ताता । सो दुर्गति कबहू नहिं पाता ४०॥
पुण्यवंत के लोकन जाई । तहां जाइ बहुकाल बिताई ॥
ता पाछे शुचि अरुधनवंता । तिन घर योग भ्रष्ट उपजंता ॥ ४१॥
अथवा विद्या ब्रह्म प्रकासी । संयत मन अरु योगाभ्यासी ॥
तिनके कुलमें जन्म सु पावै । अति दुर्लभ अस जन्म कहावै ४२॥
तहां पूर्व देही अनुसारा । पाय बुद्धि संयोग पियारा ॥
तासु अनंतर मोक्ष निमित्ता । करत प्रयत्न अधिक पुन मित्ता ४३
सो०—योग भ्रष्ट सो भाय, वा पिछले अभ्यास कर ।
बल कर डारा जाय, योग ब्रह्म निष्ठा विषे ॥
चौ०—जानन चाहत योग स्वरूपा । उसी अवस्था बीच अनूपा ॥
वैदिक कर्मन के फल जोई । उलंघन करिकै थित होई ४४

१ तुम्हारा कहना यथार्थ है. २ अल्पप्रयत्नवाला. ३बडे बादलों के समूह में से एक छोटा टुकडा बादलका अलग होकर पवनके वेगसे बिलाय जाय फिर उन बड़े बादलों के समूह में न मिल सकै. ४ शास्त्र के अनुसार चलनेवाला. ५ बुरीगति ।

पूर्व प्रयत्नहु तैं अधिकाई । जो योगी सु प्रयत्न कराई ॥
धोये गये पाप मल जिन के । जन्म अनेक सिद्धतैं तिन के ॥
तिन साधन कर फलतैं सोई । परम मुक्ति कों प्रापत होई॥४५॥
कर्मैथी तप धारी ज्ञानी । तिन में योगी बड़ा बखानी ॥
हे अर्जुन तू हू ता कारन । ऐसा योगी हो भव तारन ॥ ४६ ॥
अन्तःकरन वृत्ति मो मांही । श्रद्धावान भजैं मो कॉंही ॥
सो०–सर्व योगियन माहिं, श्रेष्ठ सुनर मेरे मते ॥ ४७ ॥
"ह्वै है कबहु कि नाहिं, गणना तेरी उन विषे ॥"

इति षष्ठ अध्यायः समाप्तः ॥६॥
श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

दो०–"पाहिले छै अध्याय में, जीव स्वरूप रु कर्म ।
दिखलाये श्रीकृष्ण ने, करन हेतु निज धर्म ॥
करने योग उपासना, परमेश्वरी स्वरूप ।
वर्णत अगले छै विषे, सुन्दर श्याम अनूप" ॥
"आत्मतत्त्व पर ब्रह्म जो, ज्ञान विषय सुखदाय ।
पिछले अध्यायों विषे, कहा कृष्ण समझाय ॥
कहा छठे के अंत में, राखे मो में चित्त ।
सोइ उपासक सर्वतैं, उत्तम जाने मित्त ॥
तब तो भया उपास्य में, ब्रह्म कहा का रीत ।
ता जानन की लालसा, अर्जुन के मन मीत ॥
बात हृदयकी जान अस, आपहि श्रीभगवान ।
भक्ति काण्ड को कहतहैं, सुनो सकल धर कान ॥
यह जो गीता शास्त्र है, ता में ज्ञान प्रधान ।

फिर पाछे काहे कहा, सुनिये तासु बयान ॥
पहिले छै अध्याय में, कर्म काण्ड सो जान ।
फिर बारह तक भक्ति है, पिछले छै में ज्ञान ॥
चित्त शुद्धिहो कर्म तें, तब भक्ती उपजाय।
तातैं उपजत ज्ञान फिर, मोक्ष पदारथ पाय ॥
उभय काण्ड के बीच क्यों, भक्ति धरी यदुराय ।
बुद्धिमान अस कहत हैं, सुनिये चित्त लगाय ॥
चलत मात जिमि सुतन बिच, हाथन हाथ मिलाय ।
थांभ लेत है वाहि कौं, जासु पाद रपटाय ॥
कर्म मार्ग तिमि कर्म तैं, चूकै भक्ति बचाय ।
चूकै ज्ञानी मार्ग तैं, भक्तिहि करत सहाय ॥
कहते याही हेतु तैं, भक्ति उभय के माहि ।
सिद्धि भई तातैं यही, करिये भक्ति सदाहि ॥
नारायण की भक्ति को, करैं सर्व चित लाय ।
का कर्मी ज्ञानी कहा, सबही को सुखदाय ॥
अहो कृष्ण भगवान जू, भक्तन के रक्ष पाल ।
दास कन्हैया के तई, दीजिये भक्ति दयाल ”

सप्तम अध्याय

दोहा-" कहा सप्त अध्या में, अर्जुन तैं भगवान
भजवे योग स्वरूप निज, सहित ज्ञान विज्ञान " ॥

श्रीभ. उ. चौपाई ।

मन आसक्त पार्थ मो माही । योग युक्त मम आस सदाही ॥
संशय रहित सर्व मम रूपा । जाने सो सुन चरित अनूपा ॥१॥
मैं तुम तैं यह करत बखाना । ज्ञान अशेष सहित विज्ञाना ॥
जाहि जानि यह पुन एकौकी । जानन योग रहै नहिं बाकी ॥ २ ॥
बीच मनुष्यन सहस अनेका । करत प्रयत्न सिद्ध हित एका ॥
तिन यत्नी सिद्धनमें मोई । तत्व तैं जाने बिरला कोई ॥ ३ ॥
भूमि अग्नि जल पवन अकाशा । अहंकार मन बुद्धि प्रकाशा ॥
अष्ट भेद वाली या भांती । अपरा मोर प्रकृति कहाती ॥४॥
सो०-अब यातैं अन्यान, परा प्रकृति तू जान मम ।
कहत जीव भूतान, जिन सब जग धारण करा ॥ ५ ॥
चौ०--हे अर्जुन यह सकल पिरानी।उभय प्रकृति कारयतुमजानी
मैं हीं सर्व जगत उपजाऊं । तथा प्रलयहू मैंहिं कराऊं ॥ ६ ॥
मोतैं अन्य पदार्थ न होई । है परमार्थ सत्य नहिं कोई ॥
जैसे मनिया पोए सूता । तैसे मो मांधि जग निस्यूता॥ ७ ॥
जलरस शशि रवि जोति प्रकाशा । पौरुष पुरुषन शब्द अकाशा ॥
वेदन विषे प्रणव कुन्ती सुत×।भूमी माही गंध पुण्य युत ॥८॥
तेज अग्नि जीवन सब प्रानी । तपसिन में मैं हीं तप खानी॥९॥
पार्थ रहित उत्पति मो मानो । सकल भूत कारण मो जानो ॥

१ शास्त्रोक्त ज्ञान. २ साधन फलादिकों सहित. ३ अनुभव ज्ञान. ४ कोई. ५ निकृष्ट. ६ दूसरे. ७ कैवल्य सर्वतैं उत्कृष्ट अत्यन्त श्रेष्ठ. ८ पोया हुआ है. ९ ओ३म्.

सोरठा—बुद्धिमान नर जोइ, तिनमें बुद्धि सु बुद्धि में।
तेजस्वी नर होइ, तिनमें तेज सु तेजमें ॥ ॥१०॥
चौ०—काम[1] राग[2] वर्जित है बल जो। हूं मैं बलवाननमें बल सो॥
अर्जुन भूतन विषे रहाऊं। काम[3] धर्म अविरुद्ध[4] कहाऊं ॥११॥
सात्विक राजस तामस भावा। पूर्व रीति मेंही उपजावा॥
तो हू में तिन माहीं नाहीं। ते हैं सब मेरे ही माहीं ॥ १२॥
गुणमय भाव सु तीन प्रकारा। तिन सब जग मोहित करिडारा॥
में इन तैं पर अव्यय[5] होई। याही तैं जानत नहिं कोई ॥१३॥
यह जो है मम दैवी माया। दुरत्यया[6] गुण तीन मिलाया॥
मेरी ही जो शरणे आवै। सो या माया कों तर जावै॥ १४॥
सोरठा०—अधम नरन में जान, पाप कर्म वाले पुरुष।
मम माया करि ज्ञान, निवृत भया है जिनन का॥
चौ०—आसुर भाव आश्रयन कीना। भजत न मोइ मूढ मत हीना १५
पुण्यवंत जन चार प्रकारा। अर्जुन भजैं मोइ निर्धारा॥
भरतर्षभ[7] नर आर्त[8] बखानी। जिज्ञासू[9] अर्थार्थी[10] ज्ञानी[11] ॥ १६॥
तिन में ज्ञानी श्रेष्ठ विशाला। नित्य युक्त इक भक्तिहि वाला॥
मैं ज्ञानीकों अति ही प्यारा। तथा सु ज्ञानी प्रियहि हमारा १७॥
मेरे मत यह सब हि उदारा[12]। पर ज्ञानी है आतम हमारा॥
जिहि कारण तैं ज्ञानी मित्ता। मेरे विषे समाहित[13] चित्ता॥
सब तैं नीक परम फल रूपा। आश्रय मोकों किया अनूपा१८॥

१ अप्राप्त वस्तुकी अभिलाषा. २ इन्द्रिय लम्पटी प्रीति. ३अपनी स्त्री विषे पुत्र उपजावै ऐसा काम. ४ अनुकूल. ५ जन्म मराणदिक सर्व विकारोंसे रहित. ६ दुरतिक्रमा तरी न जाय अलौकिक अद्भुत दुस्तर. ७ भरतवंश विषे श्रेष्ठ अर्जुन. ८ रोग पीड़ा दरिद्रादिक करिकै दुःखित ९ मेरे स्वरूप को तथा मेरी मायाको जानने की इच्छा करने वाला. १० या लोकमें परलोकमें सुख पानेकी इच्छा करनेवाला. ११ सर्व बातकी अभिलाषा छोड़ करि भक्तिके फलकी वांछा न करै और सर्व प्राणी मात्रमें मोकों विराजमान जानिके: भजै सो ज्ञानी है. १२ उत्कृष्ट. १३ मनको मेरे विषे लगाय रहना.

सो०—बहुत जन्म के अंत, ज्ञानवान अस जानता ।
सर्व जगत भगवंत, वासुदेवही रूप है ॥

चौ०—ऐसा जान भजत नर मोई । आति दुर्लभसुमहात्मा होई १९
तिन तिन कामन हृते जो ज्ञाना । आपन पूर्व प्रकृति वशि जाना॥
तिहितिहि नियम आश्रयन करिकै।भजै अन्यदेवन चित धरिकै२०
जो जो जा जा मूरत देवत । भक्ति युक्त श्रद्धा युत सेवत ॥
ता ता की मैंही ता माही । सुस्थिर भक्ति हि करत सदाही ॥२१॥
ता श्रद्धा करि युक्त भया नर । ताहि देवता की पूजन कर ॥
मैं ही पूर्व रचै जे कामा । पावत देवत तैं फल सामा ॥ २२ ॥
अल्प बुद्धि पावै फल जोई । सो फल नाशवान ही होई ॥

सो०—भजैं देवतन जोइ, ते देवन कों प्राप्त हों ।
भजैं भक्त मम मोइ, ते मोकोंही प्राप्त हों ॥ २३ ॥

चौ०—मो अव्यक्त[1] हि बुद्धि हीन नर । मानत हैं ते व्यक्त[3] रूप कर॥
अव्यय[4] परम भाव मम जोई। अति उत्तम जानत नहिं सोई॥२४॥
मैं हूं माया योग ढपाई । तातैं सब को नहिं प्रगटाई ॥
मूढ़ लोग नहिं मोकों जानैं।जन्म मरन तैं रहित न मानैं॥२५॥
भूत भविष्यत वर्तमान नर । हे अर्जुन मैं जानत सब कर ॥
मो कों तो जानत नहिं कोई । मम माया तैं मोहित होई२६॥
अहो पुरंतप भरत उजागर । सर्वभूत या देहहि पाकर ॥
राग[5] द्वेष[6] सुख दुख उपजावै । तातैं जीव मोह कों पावैं॥२७॥

---

१ मुझसे विमुख हुआ है अंतःकरण जिन्हों का. २ नहीं प्रतीत होने का नाम अव्यक्त है. ३ प्रतीत होना. ४ जन्म मरणादिक सर्व विकारों से रहित. ५ प्रीति. ६ वैर.

सो०—दूर भये सब पाप, जिन पुण्यात्मा जनों के।
द्वंद्वं[1] मोह तज आप, दृढ़[2] व्रत हो मो कों भजत ॥ २८ ॥

चौपाई।

जरा[3] मरण निवृत करनहित। करत यत्न होकर मम आश्रित[4] ॥
ते अध्यात्म[5] ब्रह्म पहिचाने। तथा कर्म सम्पूरण जाने ॥२९॥
आधि भूत अधि दैव हु जाने। अरु अधि यज्ञ हु मोमय माने॥
युक्त चित्त उपतत्त्व हि पेखे। मरण समय सो मोकों देखे॥३०॥
"कथन कीन यामें भगवाना। उत्तम मध्यम हेतु सुजाना ॥
उत्तम प्राति लछना वृति गाई। तत् पद ज्ञेय ब्रह्म जतलाई ॥
शक्ति रूप प्राति मध्यम ताई। तत् पद धेय ब्रह्म सुखदाई ॥
कृष्ण भक्ति योगादिक करिकै। ब्रह्म ज्ञान पावत चित धरिकै" ॥

इति सप्तम अध्याय समाप्त ॥ ७ ॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

---

१ सुख दुःख इत्यादि. २ निश्चल भक्ति करि. ३ वृद्धावस्था. बुढ़ापा
४ शरण. ५ देहादिक जुदे आत्मस्वरूप.

अष्टम अध्याय।

दोहा–"कृष्ण भक्त जानत जिसे, अक्षर ब्रह्म सुजान।
कर्म और अधिभूत हू, अष्टम करत बखान॥"

अ.उ.चौ०कहा ब्रह्म अध्यात्म कहाई। हे पुरुषोत्तम कहो बुझाई॥
कर्म कहा आधिभूत सुनावो। अरु अँधिदैव मोहिं समझावो॥ १॥
मधुसूदन या देह मझारा। कोन भांति अधियज्ञ विचारा॥
जिनपुरुषन मन निज वश कीन्हा। मरन समय तुम कों कसचीन्हा २
श्रीभ.उ.अक्षर ब्रह्म जान परमातम। तासु स्वभाव जीव अध्यातम
भूतन उत्पति वृद्ध करावै। सो विसर्ग सो कर्म कहावै॥ ३॥
नाशवान देहादि जानिये। तिनही कों अधिभूत मानिये॥
पुरुष हिरण्य गर्भ है जोई। सुन अधिदैव कहावै सोई॥
सो०–मोकों अधि यज्ञ मान, हो हो देह भृतांवरः।
सो अधियज्ञ सुजान, वर्तत है या देह में॥ ४॥

चौ०–मरनसमय हू जो मम ध्याना। छांड़ देह नर करै पयाना॥
प्राप्त सु मम स्वरूपता माहीं। सुन यामें कछु संशय नाहीं॥५॥
कुन्ती सुत सब काल मझारी। तिंहि तिहि विषे भावना धारी॥
मरन समय जिहिजिहिकों ध्यावत। छोड देह तिहि२कों पावत ६
तिहि तैं सर्व काल विच मेरा। चिंतन कर कर युद्ध घनेरा॥
करो बुद्धि मन अर्पण मोई। पावै मुहि नहि संशय कोई॥ ७॥
पार्थ सदा परमात्मा ध्याई। योगयुक्त अभ्यास कराई॥
इत उत चित्तहि नाहि डुलाई। परम दिव्य पुरुषहि सो पाई८॥

---

१ क्षरण रहित. २ सर्व यज्ञोंका अधिष्ठान रूप तथा फल का प्रदाता विष्णुदेव. ३अर्जुन. ४ चलना. यात्रा. ५सोच चिन्ता. ६शास्त्र-विहित नित्य नैमित्तिक कर्मोंसे युक्त.

सो०—है सर्वज्ञ[1] पुरान[2], तथा नियन्ता[3] सर्वका ।
है थित पर अज्ञान, सूक्षम[4] तें हू सूक्ष्म अति ॥

चौ०—सबका धारण[5] करने हारा । तथा अचिंत्य[6]रूप विस्तारा ॥
करत प्रकाश सूर्य की न्याईं । ऐसे दिव्य पुरुष के ताईं ॥
चिंतन करत पुरुष जो कोई । दिव्य पुरुषको पावत सोई ॥९॥
मरन समय मन ले अचलाई । भक्ति युक्त योगहि युक्ताई ॥
सम्यक[9] प्राण भ्रुवों बिच लावै । दिव्य परमपुरुषहि सो पावै १० ॥
जिहि अक्षर कों अर्जुन प्यारे । कथत वेदके जानन हारे ॥
निस्पृह[10] सन्यासी[11] जहँ जाई । जिहि इच्छित ब्रह्मचर्य कराई ॥
तिहि पदकों मैं तुमहि सुजाना । करि संक्षेप[12]हि करूं बखाना ११
सो०—रोकि रहै सब द्वार, मन निरुद्ध[13] करि हृदयमें ।
मूर्द्धा[14] देश मझार, ठैरा करिकै प्राण कों ॥
चौ०-आतम विषयक जो नर होई । योग धारणा कों कर सोई १२
ॐ एक अक्षर ब्रह्मरूपा । जपत करत मम ध्यान अनूपा ॥
देह हि परित्याग[15] करिजावै । सो नर परमगतिहि कों पावै १३ ॥
जो पारथ अनन्य[16] मो चित्ता । भजत निरंतर[17] नित्य सुमित्ता ॥
नित्य युक्त योगी जन ताईं । हूं मैं अतिहि सुलभ[18] सुखदाई १४ ॥

---

१ सब जानने वाला. परमेश्वर. २ पुराना. ३ सूर्य चन्द्रमादिक सर्व जगत को नियमपूर्वक चलाने वाला. ४ छोटेसे छोटा. ५सबका आधार.६ चिंतनासे रहित.७ याद करना. ध्यान.८ मन इधर उधर न जावै भक्तिपूर्वक ईश्वरके चरणोंमें लगा रहै. ९ पूरी तोर पर प्राणों को दोनों भौंवों के बीचमें रक्खे.१०इच्छा रहित. ११ संसारकी चीजोंका त्याग करने वाला परमहंस. १२ थोड़ा सा. १३ रोककर. १४ शिरके ऊपरका हिस्सा. १५ छोड़ना.१६ जिसको दूसरेका भरोसा नहीं १७ लगातार. १८ सहज.

नाशवान सब दुःख स्थाना । ऐसा जो यह जन्म बखाना ॥
मों कों ही हो करिकै प्रापत। बहुर जन्म नहि ते नर पावत॥१५॥
ते जु महात्मा जन जिहि कारन । परम सिद्धि पाई जग तारन॥
सो०—अर्जुन आवन होय, ब्रह्म लोक पर्यंत तैं ।
पाकर अर्जुन मोय, बहुर जन्म नहि होत है ॥ १६ ॥
चौ०—सहस[1]चतुर्युगबीतत जब ही । ब्रह्माका दिन होवत तब ही
एता ही है रात्रि प्रमाना । जानत अहो रात्रि विद्वाना ॥१७॥
सर्व व्यक्तियां[2] अज दिन आवत । अव्यक्त[3] हि तैं यह उपजावत
रात्रि आगमन हो जग झीनां[4] । ता अव्यक्त विषे हो लीना१८॥
सोई ही यह भूत समूहा । उपज उपज परवश में हूआ ॥
दिन आगमन पार्थ उपजावै । रात्रि आगमन लय हो जावे १९
तिहि अव्यक्त परे सत भावा । इन्द्रिन तैं नहि जाइ लखावा ॥
नित्य विलक्षण भाव कहावै । भूत नशे सब नाहि नसावै २०॥
सोरठा—अक्षर अरु अव्यक्त, परम गती जाको कहत ।
पाकर ताकों भक्त, फेर जन्म नहिं लेत है ॥
चौ०-सो सर्वोत्तम मोर स्वरूपा। "कहत कन्हैया दासअनूपा" २१
पार्थ परा परमात्मा सोई । प्राप्त अनन्य भक्ति करि होई ॥
सर्व जीव जा माहि बसाई । जाकर सब जग व्याप्त कराई२२
जिहि मारग तैं जाने हारे । भर्तर्षभ योगी जन सारे ॥
अनावृत्ति[6] आवृत्ति[7] हि पावत । सो मारग मैं तुमहि बतावहु[8]॥२३॥
शुक्ल पक्ष दिन अग्नि प्रकाशा । होवत उतरायण षट मासा ॥

---

१ हजार चौकड़ी. २ मूर्तियां. ३ प्रलय के समय जिसमें यह सर्व व्यक्तियां रहती हैं और जो इन्द्रियों करिकै अगोचर है उसका नाम अव्यक्त है.४ पतील. ५ नाना प्रकारका दिखाई देना. ६ फिर लौट कर न आवै ७ फिर लौटकर आवै. ८ छै.

ब्रह्म उपासक करै प्रयाना । पाइ ब्रह्म ता मार्ग सुजाना॥२४॥
कृष्ण पक्ष धूमहि निशि आवै। दक्षिणायन षट मास कहावै ॥
सो०–कर्मी जन जहं जाय, शशि मंडल में प्राप्त हो ।
कर्मफलन कों पाय, पुन आवत या लोकमें ॥२५ ॥
चौ०–लोकनके पथ यह प्रसिद्ध[1] हैं।शुक्ल[2] रु कृष्ण[3] अनादि सिद्ध हैं
शुक्ल मार्ग करि जेते जावैं । अनावृत्तिकों सो जन पावैं ॥
कृष्ण मार्ग करि जावैं जेते । बहुर लौट कर आवैं तेते॥२६॥
पारथ मार्गन जानत जोई । मोह न पावत योगी सोई ॥
तिहि तैं हे अर्जुन सब काला। योग युक्त तुम होउ विशाल२७
वेद यज्ञ तप दान मझारी । जोइ पुण्य फल शास्त्र विचारी ॥
हे अर्जुन सो ध्यान निष्टजन। तिहि सब ज्ञान करै उल्लंघन ॥
तथा परम कारण कर स्थाना। ताको प्रापत होइ सुजाना २८

इति अष्टम: अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

---

१ जाहिर. मशहूर. २ उजेला. ३ अँधेरा.

नवम अध्याय।

दो०-"ब्रह्म रूप अष्टम कहा, वाही का ऐश्वर्य।
कहत नवम अध्याय में, जो है अति आश्चर्य ॥"

श्रीभ.उ. चौपाई।

रहित असूया[1] तैं तुम ताई। यह अत्यंत गुह्य[2] मैं गाई ॥
तथा ज्ञान विज्ञान सहेता। कथन करत हूं तुमरे हेता ॥
जाहि पाइ अज्ञान मिटाई। अर्जुन जग बंधन छुट जाइ॥ १ ॥
हे अर्जुन यह आत्मज्ञाना। राजा विद्या सर्व बखाना ॥
सब तैं गुह्य पदार्थन राजा। उत्तम सर्व पवित्र समाजा ॥
फल प्रत्यक्ष धर्मकी बाता। सुख सेवी अक्षय[3] फल दाता ॥२॥
हे अर्जुन या धर्महि माहीं। श्रद्धा जिन पुरुषन के नाहीं
मो कों प्राप्त न हो कर लौटत। मृत्यु मार्ग संसृत में औटत३॥

सो०-सब जग व्यापत कीन, मो अव्यक्त हि मूर्ति ने।
यातैं सब प्राणीन, हैं थित मेरे ही विषे ॥

चौ०में तिन माही सांस्थित नाहीं×।'शरण कन्हैया तोर सदाहीं'४×
बसत न मोमें जीवहि धारी।यह ईश्वरता देख हमारी ॥
मम सत चित आनंद स्वरूपा। भूतन धारण करत अनूपा ॥
मैंही सब भूतन उपजावत। तोऊ नाहिं तिन माहि बसावत ५
जैसे वायू रहत अकाशा। सदा महान चहूं दिशि वासा॥
तैसे सब थित मोमें प्रानी। या प्रकार तू निश्चय आनी ॥६ ॥
प्रलय काल सब भूत अधीना। मम प्रकृति में होवत लीना ॥
अर्जुन सृष्टि काल पुन आवत। मैं तिन भूतन कों उपजावत७॥

---

१ गुणोंके विषे दोष दृष्टि करनी. २ छुपाहुआ ३ नहीं नाश होना.

सो०—स्वयं प्रकृति अनुसार, उपजावत सब सृष्टिकों।
मैं ही बारम्बार, माया के परभाव तैं॥ ८॥

चौ०—ह्वै थित उदासीन की न्याईं। धन जय हर्ष विषाद विहाईं
मैं आसक्त न कर्मन माही। मोहि कर्म ते बांधत नाही॥९॥
लेकर मोर प्रकृति सहारा। जगत चराचर सिरजत सारा॥
याही कारण तैं कुन्तीसुत। परिवर्तत सबही जग इत उत१०॥
यह जो मनुष रूप में धारा। करत अनादर मूढ़ गमारा॥
मेरा भूत महेश्वर रूपा। तत्त्वहिं परम न जान अनूपा॥ ११॥
निष्फल आशा कर्म रु ज्ञाना। चित विक्षिप्त सकल जग जाना॥
प्रकृति मोहिनी आसुर वीचा। और राक्षसी माही नीचा॥ १२॥

सो०—महा पुरुष हैं जोय,। पारथ दैवी प्रकृतिका।
आश्रय लीना सोय, हो अनन्य चित मोयकों॥

चौ०—भूतनसकल आदि अविनाशी। ऐसा जान भजत सुखराशी॥
सदा कीर्तन[3] करत हमारा। दृढ व्रत होकर यतन विचारा॥
भक्ति सहित मोकों सिर नावत। नित्य युक्त हो मोहि उपासत॥
ज्ञान यज्ञ करि सेवत कोई। एकहि धर्म उपासत मोई॥
कोइ पृथक कोइ वहुत प्रकारा। विश्वरूप ईश्वर चित धारा१५॥
क्रतु[4] अग्निष्टोमादिक में हूं। यज्ञ स्मार्त पंच सो मेंहूं॥
पितृ हेतु श्राद्धादिक मेंहूं। औषध कहैं अन्न सो मैं हूं॥
अथवा रोग मिटावे जोई। ऐसी औषध जानो मोई॥

सो०—मंत्र कहावै जोय, हव्य[5] कव्य[6] के दान का।
सोइ जानिये मोय, होमँहु साधक घृत्त मैं॥

---

१ एरा फेरी पलटनार नाना प्रकार के कर्मजालसे चित्त उलझ रहा है, ३. गुण वर्णन ४. श्रौतकर्म. ५. देवता को बलि या भेट नैवेद्य ६. पितरोंके लिये जो अन्न आदि पदार्थ७हवन यज्ञ. वेदके मंत्रों से देवताओं को बलि देने के लिये घी आदि को आग में डालना.

चौ०-आहवनीय अग्निसो मैं हूं । अरु हुत कहै होम सो मैं हूं ॥ १६
मैंही जगत पिता अरु माता । वेद्य सुवस्तु पितामह धाता ॥
ऋक यजु साम वेद ओंकारा । मैंही वस्तु पवित्र निहारा १७॥
गति भर्ता प्रभु साक्षी रूपा । शरण निवास रु सुहृत स्वरूपा॥
प्रभव प्रलय स्थान निधाना । नाश रहितमें बीज बखाना १८
अर्जुन मैंही ताप करत हूं । जल आकर्षण मैंहि करत हूं ॥
ता जलको पुन भूमि मझारी । मैंही परित्याग करि डारी ॥
मैंही अमृत मृत्यु कहाऊं । मैंही सत अरु असत गिनाऊं १९
सो०-तीन वेदको जान, जे नर यज्ञन को करत ।
करत सोमको पान, मेरा पूजन भजन करि ॥
चौ०-पापन रहित स्वर्गको चाहत । पुण्य प्रताप स्वर्गते पावत ॥
दिव्य देवतन भोग विलासा । तहां जाय भोगत सुखरासा ॥ २०

१ होमी हुई. होमनेकी चीज जैसे घी आदि. २ जानने योग्य पर. ब्रह्म. ३ इस जगतका पोषण करनेवाला. ४ कर्मों करिके फलकी प्राप्ति. ५ पोषण करनेवाला. ६ दुःखादिकोंकी निवृत्ति करनेवाला. ७ शुभअशुभ कर्मोंको देखनेवाला. जैसे सूर्य चन्द्रमादिक हैं. ८ जिसके समीप दुःख विनाशको प्राप्त होवै. ९ भोग स्थान. १० प्रति उपकारकी नहीं अपेक्षा करिकै उपकार करनेवाला. ११ जगतकी उत्पत्ति. १२ विनाश. १३ लयस्थान. १४ उत्पत्तिका कारण. १५ सूर्य रूपहो कर तपता. १६ खींचना. मेघरूप है वर्षता. १७ सर्व प्राणियोंका जीवन. १८ सर्व प्राणियोंका नाश करनेवाला. १९ जो वस्तु जिस आधारके सम्बन्धवाला हुआ विद्यमान होवै है सो वस्तु तिस आधार विषे सत कहा जावै है जैसे रूप पृथ्वी जल तेज रूप आधारके संबंध वाला हुआ विद्यमान होवै है. यातें सो रूपता पृथ्वी जल तेज रूप आधार विषे सत कहा जावै है. २० जो वस्तु जिस आधारके सम्बन्धवाला हुआ नहीं विद्यमान होवै है सो वस्तु तिस अधिकरण विषे असत कहा जावै है. जैसे सोईही रूप वायु आकाश रूप आधारके सम्बन्धवाला हुआ विद्यमान होवै नहीं यातें सो रूपता वायु आकाश विषे असत कहा जावै है. ऐसे सत असतरूप अन्य पदार्थों विषे भी जान लेना. २१. सोमलता नाम जडी और उसका रस ।

स्वर्ग विशाल भोगते जावैं । बार बार भूमी पर आवैं ॥
ऐसे त्रयी धर्म पुन करते । भोग कामनाकों अनुसरते ॥
बार बार ते स्वर्गहि जावैं । बार बार भूमी पर आवैं ॥ २१ ॥
हो अनन्य जे जन अधिकारी । चिंतन करते भये हमारी ॥
मुझ परब्रह्महि जान उपासत । अपन आत्मा करिकै भासत ॥
नित्य युक्त तिन पुरुषनताई । योग क्षेममें प्राप्त कराई ॥२२॥
सो०-अन्य देवतन भक्त, श्रद्धायुत पूजन करैं ।
तिनमें हो आसक्त, अविधि रीति मुहि पूजते ॥ २३ ॥
चौ०-यज्ञन भोक्ता फलन प्रदाता । मैंही हूं प्रसिद्ध यह बाता॥
तत्त्व रूप तैं मोहिं न जानत । ताही कारण दिवँ तैं आवत २४
देवन पूजक देवन पावैं । पूजक पितर पितर ढिग जावैं ॥
भूत भजै लहि भूत स्थाना । मो पूजहि लहि मो भगवाना२५॥
भक्ति सहित मोको जे देता । पत्र पुष्प फल नीर समेता ॥
भक्ति पूरवक अर्पण कीने । शुद्ध चित्त जन सो हम लीने २६
हे कुन्ती सुत जो तू करता । जो भोजन जो होमहि करता ॥
जो तप करता दान जु देता । सो सब अर्पण करि मम हेता॥२७
सो०-अस करने तैं भाय, फलन सहित शुभ अरु अशुभ ।
निश्चय करि छुट जाय, कर्मन रूपी बंध तैं ॥
चौ०-हो सन्यास योगसे युक्ता । पाय मोय अरु होवै मुक्ता ॥
मैं समान सब भूतन माही । मेरे द्वेष्य रु प्रिय कोउ नाही ॥
भक्ति सहित जे मोय भजतहैं । मैं तिन ते मोमाहि वसत हैं२९

१ पूर्व अप्राप्त अन्न वस्त्रादि पदार्थोंका रक्षण. २ देनेवाला. ३ स्वर्ग. ४ शत्रु ।

जबहि दुराचारी हू कोई। हो अनन्य चित भजता मोई ॥
तबही सोइ साधुही मानो। करतब नीक तासु सो जानो॥३०॥
शीघ्र होइ धर्मात्मा सोई। नित्य शान्तिकों प्रापत होई ॥
ऐसी प्रज्ञाकर कुन्ती सुत। भक्त हमार नाश नहिं होउत३१॥
वैश्य शूद्र अथवा हो नारी। पाप योनि चंडाल विचारी ॥

सो०-परम गतीको पाय, तेऊ मोरी भक्ति कर।
कहुँ पारथ समझाय, निश्चय करि तू जान यह ॥३२॥

चौ०-उत्तमवर्ण भक्त मम जेई। ब्राह्मण तथा रु क्षत्रिय तेई ॥
परम गतीको पाइ सदाही। कहन कहा सुन याके माही ॥
यातैं असुख[1] अनित्य[2] शरीरा। पाकर मोइ भजो मत धीरा ३३॥
मोर भक्त अरु मोंमें चित्ता। करिये पूजन मेरी मित्ता ॥
नमस्कार कर मेरे ताई। ऐसे मोर शरणमें आई ॥
मोंमें अंतःकरण लगाई। मोहीकों प्रापत हो जाई ॥ ३४ ॥
"हरि अर्जुन प्रति नवम मझारी। राज गुह्य विद्या उच्चारी ॥
राज गुह्य यह योग कहाया। अद्भुत ऐश्वर्य दिखलाया ॥

सो०-सोइ जगत सुख दाय, वासुदेवकी कृपा तें।
भाषा बीच बनाय, दास कन्हैयाने कहा ॥"

इति नवम अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥
॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

---

१ सुखराहित. २ नाशवान ।

दशम अध्याय ।

दो०—"सप्तमसे ले नवम तक, सूक्ष्म किया बखान ।
अर्जुनसे श्रीकृष्णने, निज विभूतिका ज्ञान ॥
अब दशमें अध्यायमें, कथत तिनन विस्तार ।
परमेश्वरके लखन हित, सबही ठौर मझार" ॥

चौ० पुन सुन परमवचन चितधरिकै ।जो मैं तवहित इच्छाकरिकै
तोर प्रीति वारेके ताई । कथत महाबाहो सुखदाई ॥१॥
महर्षि अरु इन्द्रादिक देवा । जानत नहिं मम प्रभव[1]हि भेवा ॥
तिन देवन ऋषियन विस्तारा । हूं मैं कारण[2] सर्व प्रकारा ॥२॥
आदि रहित अज[3] जाने जोई । सबही लोक महेश्वर मोई ॥
मोह दूरहो जन विच जबही । पाप तासु मिटजावैं सबही ३ ॥
दम[4] शम[5] क्षमा[6] सत्य[7] बुद्धि[8] ज्ञाना[9]। असंमोह[10] भव[11] सुख[12] दुख[13] नाना॥
भाव[14] अहिंसा[15] समता[16] दाना[17] । तप[18] यश[19] अयश[20] भया[21] भय[22] जाना॥

---

१ जन्म. २ आदि. ३ उत्पत्तिरूपजन्मसे रहित. ४ बाह्यइन्द्रियोंसे विषयोंकी निवृत्ति. ५अंत:करणकी शब्दादिक विषयोंसे निवृत्ति- ६ कोई कठोर वाणी करिकै अथवा दण्डादिकों करिके ताड़न करे हुए पुरुषका जो निर्विकार पनाहै अर्थात् तिस ताड़न करनेहारे प्राणीके अनिष्टको नहीं चिंतन करना है ताका नाम क्षमा है. माफकरना.७ यथार्थ बोलना. ८ पदार्थके बुरे भले स्वरूपको निश्चय करनेवाली वृत्ति. ९ आत्म अनात्मरूप सर्व पदार्थोंका प्रबोध. १० अव्याकुलता. ११ उत्पात्ति. १२ इच्छित पदार्थकी प्राप्तिसे उत्पन्न हुआ विषयसुख. १३ प्रियवस्तुका वियोग. १४ यह शब्द प्रभावहै जिसके माने लयके हैं. १५ जासे पर पीडा न उपजै. १६ प्रियअप्रियकी प्राप्ति विषे राग द्वेषरहित चित्तवृत्ति. १७ काशी कुरुक्षेत्रादिक पवित्र देशमैं सूर्य चन्द्रमादिकग्रहण विषे सत पात्रको द्रव्य देना. १८ चांद्रायणादिव्रतउपवास पंचाग्नि आदि दे कायाकष्ट. १९ लोक विषे पर पीठि कीरति. २० सर्ववस्तु अपकीरति निंदा. २१ राजदंड चोर व्याघ्रसर्पादिकसे अंत:करणमैं त्रास उपजे. २२ शरणागतिकीसी नाई मनकी त्रास मिटना ।

सो०–तथा तुष्टहू जान, यह नाना परकारके ।
कार्य सर्व भूतान, मोही तें उत्पन्न हैं ॥ ४॥ ५ ॥
चौ०–सप्त ऋषी अरु मनु सनकादी । यहसब भये सृष्टिके आदी॥
ते मद्भावा मानस जाता । लोक प्रजा ये जिनके ताता ॥६ ॥
मेरी योग विभूती जोई । कथित तत्त्व विधि जाने सोई ॥
अचल योग संयुक्त सदाही । हो यामें कछु संशय नाही ॥७॥
मैंही सब जग उत्पति कारन । मोतैं सर्व प्रवृत्त विचारन ॥
अस विद्वान जानकै जोई । भजते प्रेम भाव करि मोई ॥ ८ ॥
प्राण चित्त मोमें जे धरते । मोर परस्पर बोधन करते ॥
तथा निच्यही मोइ बखानत । हो संतुष्ट परम सुख जानत॥९॥
सो०–जासु बुद्धि इक ठोर, रहत निरन्तर मो विषे ॥
प्रीति पूर्वक मोर, करने हारे भजनके ॥
चौ०–बुद्धि योग मैं दूं तिनताई । जा करिकै मोको ते पाई ॥१०
मैं अस उनपर दया करन हित । तिन स्वरूपमें होकरिकै थित॥
करत ज्ञान दीपक उजियारा । तम अज्ञान जन्य निर्वारा ११॥

अर्जुन उवाच ।

परब्रह्म अरु परम सुधामा । परम पवित्र आप घनश्यामा ॥
पुरुष जु शाश्वत दिव्य बखानै ।आदि देव अज विभु तव जानै १२
सब ऋषि सुर ऋषि नारद गाई । देवल असित व्यास हमताई ॥
आपहु यों साक्षात बखानत । केशव सर्व सत्यमें मानत॥ १३॥
पर यह तव प्रभाव भगवाना । देव तथा दानव नहिं जाना १४॥
सो०–पुरुषोतम् भूतेश, सब भूतन उपजात तुम ।
ब्रह्मा आदि महेश, तिनन देव तुम जगत पति ॥

---

१ यथा लाभ संतोष. २ मेरे प्रभाव सहित हैं. ३ मनसे. ४ उपजे हैं. ५ एक दूसरेसे जतलाना. ६ सदैव. लगातार- ७ अनादि अविनाशी. ८ अलौकिक. ९ सर्वत्र व्यापक ।

चौ०-तूं आपन स्वरूप करि सांई। जानत अपन आत्मातांई ॥
जिन विभूति करि इन लोकनको। करिकै व्यापत थित हौ तिनको
दिव्य समग्र विभूती आपन। भगवन आपहि योग्य अलापन[१] ॥
योगिन[२] ध्यान सदा करि थारा। जानूं में तुम कवन प्रकारा ॥
भगवन किन किन वस्तु मझारी। में अर्जुन चिंतन तव धारी ॥
अपन विभूति योग विस्तारा। हे जनारदन कहो विचारा ॥
सुनत तुम्हारी अम्मृत वानी। पान करत मो तृप्त न आनी ॥

श्रीभगवान उवाच।

एती सुन भगवत् अस बोले। कुरुश्रेष्ठ सुन वचन अमोले ॥
सो०-दिव्य विभूति हमार, अबहिं तुम्हारे हेतु में।
अन्त नहीं विस्तार, मुख्य जिती तेई कहत ॥ १९ ॥
चौ०-सब जीवनके हिये मझारी। मोको आतम रूप निहारी॥
मेंही आदि मध्य अरु अंता। गुणाकेश भूतन भगवंता ॥२०॥
आदित्यनमें विष्णु कहाऊं। अंशुमान रवि ज्योतिन माऊं ॥
में हूं चन्द्र मध्य नक्षत्रण। वायु मरीची मध्य मरुद्गण ॥२१॥
सामवेद वेदन में गाई। इन्द्र देवतन माहि गिनाई ॥
इन्द्रिनमें मेंही मन राजा। मेंहि चेतना[३] भूत समाजा ॥२२॥
रुद्रनमें शंकर हूं मेंही। तथा वसुनमें पावक मेंही ॥
यक्ष राक्षसन विषे कुबेरा। शिखर पर्वतन शैल सुमेरा ॥२३॥
सो०-मोहि बृहस्पति जान, मुख्य पुरोहित गण विषे ॥
सरमें सागर मान, षट मुख सेना पतिनमें ॥ २४ ॥
चौ०-महा ऋषिनमें भृगु ऋषि में हूं। अक्षर[४] एक गिरा[५] विच में हूं ॥
यज्ञनमें जपयज्ञ कहाऊं। हिमगिरि थावरमाहि गिनाऊं ॥२५॥

---

१ कहनेको. २ निरतिशय ऐश्वर्यादिक शक्तिवाला. ३ ज्ञानशक्ति. ४ ॐ. ५ वाणी ।

वृक्षनमें पीपर मुहि जानो । देव ऋषिनमें नारद मानो ॥
में हि चित्ररथ गंधर्वनमें । में ही कपिल मुनी सिद्धनमें ॥२६॥
अश्वन उच्चैश्रवा कहाया । अम्मृत मथन काल उपजाया ॥
में ऐरावत गजन मझारी । नरमें राजा मोय विचारी ॥ २७ ॥
में हूं वज्र बीच हथियारन । में हूं कामधेनु बिच गायन ॥
कामदेव संतत उपजावत । वासुकि सर्पन माहि गिनावत २८॥
सो०–नागन माहि अनंत, मेंहि वरुण जल चरणमें ।
यम बिच संजमवंत, पितरनमें हूं अर्यमा ॥ २९ ॥
चौ०–संख्या गणना करने हारे । तिनमें में हूं काल पियारे ॥
दैत्यन में प्रह्लाद विशाला । मृगन सिंह पक्षिन रिपुव्याला[1] ३०॥
वायु वेग वानन में मेंहूं । राम शस्त्रधारिनमें मेंहूं ॥
मकर मत्स्यगणमें मुहि जानो । नदियनमें गंगाजी मानो ३१॥
अर्जुन सकल सृष्टि भरावंता[2] । में ही आदि मध्य अरु अंता ॥
विद्यामें अध्यातम ज्ञाना । वादबीच वादिनमें जाना ॥३२॥
अक्षरमाहि अकार विकासा । बीच समासन द्वंद्वसमासा ॥
अक्षय काल कर्म फल दाता । में ही सर्वओर मुख धाता ३३॥
सो०–तथा सर्व संहार, करने हारा मृत्युमें ।
वस्तु भविष्य[3] मझार, अर्जुन में हूं उद्भवः[4] ॥
चौ०–सर्व नारियन माहिं बतावैं । धर्मपत्नियां सप्त कहावैं ॥
तेइ मेंहूं श्री[5] वाक्[6] स्मृती[7] । मेधा[8] कीर्ति[9] क्षमा[10] अरु धृती[11] ॥३४॥
बृहत्साम सामों विच मेंहूं । गायत्री छंदन विच मेंहूं ॥

१ गरुड़. २ सर्वका भरण पोषण करता. ३ आनेवालासमय. ४ होनहार. ५ लक्ष्मी शोभा. ६ सरस्वती, वाणी. ७ सुरता, स्मरण. ८ बुद्धि. ९ बडाई, यश. १० सहनशीलता. ११ धैर्य ।

मार्गशीर्ष मासनमें में हूं । ऋतुवसंत ऋतुवनमें में हूं ॥ ३५॥
छलकारिनमें जुवा कहाऊँ । तेजास्विनमें तेज लखाऊँ ॥
विजयन जय उद्यम उद्योगी। में हूं सत्व सात्विकी योगी॥३६॥
यदुकुलमें वसुदेव सुवनहूं । बिच पाण्डवन धनंजय में हूं ॥
मुनिनमांझ में वेदव्यासा । कविनविषे में शुक्र प्रकासा॥३७॥

सो०-जय शीलनमें नीति, दंडवंतमें दंड हूं ॥
मौन दुरावनरीति, ज्ञानिनमें में ज्ञान हूं ॥ ३८ ॥

चौ०-सब भूतनका कारण जोई । सोभी अर्जुन में ही होई ॥
मो विन वस्तु चराचर माहीं । होवै सो वस्तू है नाहीं ॥३९॥
दिव्य विभूतिन मम भगवंता । नहीं परंतप है तिन अंता ॥
कीन जु यह विभूति विस्तारा । यह संक्षेपाहि कथन हमारा॥४०॥
जो जो प्राणी है बलवाना । सम्पतिवान तथा धनवाना ॥
सो सो मोहीं तैं तुम मानो । शक्ति अंश कारि उपजा जानो ४१
अथवा अर्जुन या वहु जाने । कार्य कहा हो सिद्ध सयाने ॥
एकअंश कारि सवजग विस्तृत ।धारण कारि में भयारहों स्थित ४२

इति दशमअध्याय समाप्त ॥ १० ॥
॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

एकादश अध्याय।

दोहा-"एकादश अध्यायमें, विश्वरूप यदुनाथ।
दर्शाया निज भक्तको, दिव्य दृष्टिके साथ"॥

अ.उ.चौ०-मोर अनुग्रह[1] हेतु कन्हाई। परम गुह्य अध्यात्म सुनाई
आतम ज्ञान रूप तुम गाया। सुनत वचन मम मोह नसाया॥१
अहो कमलपत्राक्ष[2] सुजाना। भूतन उत्पति प्रलय बखाना॥
सुना तुमहितैं हम विस्तारा। अव्यय[3] रूप महात्म तुम्हारा२॥
परमेश्वर निज आतमा जैसा। कथत हो तुम सो मानत तैसा॥
तउ पुरुषोत्तम ईश्वर रूपा। देखा चाहत तोर अनूपा॥ ३॥
लखन रूप है मम अधिकारा। मानत यदि प्रभु याहि प्रकारा॥
तो योगेश्वर हमहि बतावो। अविनाशी आतमहि दिखावो ४॥

श्रीभ.उ. सो०-शत सहस्र मम रूप, पारथ अब तू देखले।
नाना वरण अनूप, बहुत भांति है दिव्य जो॥ ५॥

चौ०-लख आदित्यन वसुवन रुद्रन। मरुतन अरु अश्विनीकुमारन
भारत पूर्व न देखे जोई। अद्भुत रूप सहित लख सोई॥६॥
गुडाकेश या देह मझारी। एकैस्थं[4] सचराचर धारी॥
देखो जगत समस्त अबारी। लख जो इच्छा होइ तुम्हारी॥७
लख न सको इन नयनन मोकों। तातैं दिव्यदृष्टि[5] देउं तोकों॥
दिव्य चक्षु करि मोकों पेखो। योग रूप ऐश्वर्य सुदेखो॥८॥
सं.उ०-हे राजन अस कहि भगवाना।योगेश्वर श्रीकृष्ण सुजाना॥
तासु अनंतर अर्जुन ताँई। दिव्य ऐश्वर्य रूप दिखाई॥ ९॥

---

१ दया. २ कमलके पत्रकी नाँई दीर्घ, विशाल, किंचित रक्तायुक्त तथा अत्यन्त मनोहर हैं नेत्र जिसके. ३ अनादि अनंत रूप. ४ एक अवयवविषे स्थित. ५ अपरा कृत चक्षु।

सो०—मुख अरु नेत्र अनेक, अद्भुत दर्शन बहुतसे ॥
भूषण दिव्य अनेक, ऊंचे आयुध दिव्य बहु ॥ १० ॥
चौ०—धारत दिव्य वस्त्र अरु माला। लेपित दिव्य सुगंध विशाला
सर्वाश्चर्य अनंतहु रूपा। मुख चहुं ओर प्रकाश स्वरूपा ॥११॥
सहस सूर्य आकाश मझारी। उदय प्रभा हो एकहिवारी ॥
होय प्रभा सो अस अनुमाना। विश्वरूपकी प्रभा समान १२
सो अर्जुन तिहिकाल सुजाना। देवन करि पूजित भगवाना ॥
विश्व सुरूप शरीर मझारा। भिन्न भिन्न में अमित प्रकारा ॥
काहु एक अवयवमें संस्थित। देखत भया जगत सब विस्तृत १३
तापाछे विस्मय करि व्यापत। पुलकित रोमांचितको प्रापत॥
सो०—शिर तैं करि परिनाम, सो धनजय ता देवकों॥
कहत भया सुखधाम, दोऊ करको जोड़ करि ॥१४॥
अ.उ.चौ०—देव तुम्हारे देह मझारी। में अर्जुन सब देव निहारी॥
तथा हि स्थावर जंगम रूपा। देखत भूतन झुंड अनूपा ॥
सर्व नियन्ता ब्रह्मा देखत। थित कमलासन पै वर पेखत ॥
तथा सर्व ऋषि देत दिखाई। तथा दिव्य उर्गान लखाई१५॥
उदर बाहु मुख आँखैं शीशा। देखत अंतरहित जगदीशा ॥
नहि तव आदि मध्य अरु अंता। देखत विश्वरूप भगवंता १६
शीश मुकुट कर गदा विराजै। दूसर चक्र सुदर्शन साजै ॥
सबही ठौर प्रकाश स्वरूपा। तेज समूह दिखाय अनूपा ॥
सो०—तुम प्रकाश युत मान, अग्नि सूर्य सम किरन तव।
अप्रमेय भगवान, सर्व ओर देखैं तुमहि ॥ १७ ॥

---

१ तेज, किरण. २ बहुत तरहसे. ३ आश्चर्य. ४ हाथ. ५ शिक्षक, देवनका ईश्वर. ६ सबसे अच्छा. ७ अचिंत्य प्रभाववाले।

चौ०-अक्षर परम आप भगवाना। आपहि या जग परम निधाना॥
शाश्वत[1] धर्महि पालन हारे। अव्यय[2] जानन योग हमारे ॥
पुरुष सनातन तुमकों मानत। उत्पाति थिति लयरहित सुजानत॥
बाहु अनंत प्रभाव[3] अनंता। रवि शशि उभयनेत्र भगवंता॥
प्रज्वलित अग्नि मुखनके माही। करिकै आपन तेज सदाही॥
करत तपाय मान यह जग सब। ऐसा देखत में स्वरूप तब१९
भूमि गगनमधि सब दिश लीना। तैं एकहिने व्यापत कीना॥
अद्भुत उग्र रूप लखतेरा। तीन लोक भयभीत वनेरा॥२०॥
सो०-प्रवशित[4] सब भगवान, सुरन झुंड तुमही विषे।
कोई भयकों मान, करत विनय कर जोरिकै॥
चौ०-तथा महाऋषि सिद्ध समाजा। स्वस्ति[5]वचनकहि रक्षणकाजा
पूरण बोधक[6] वचन उचारी। विनती सब मिल करत तुम्हारी२१
जो आदित्य रुद्र वसुदेवा। तथा साध्य अरु विश्वेदेवा॥
तथा मरुत अश्वनी कुमारा॥ तथा ऊष्मपा पितृ विचारा॥
सिद्धरु असुर यक्षगंधर्वा। विस्मित हुए देखकै सर्वा॥२२॥
महाबाहु अत्यंत महाना। बहु मुख नयन ऊरु[7] भुजनाना॥
बहुत पाद[8] बहु उदर[9] विशाला। बहुतहि डाढन सहित कराला[10]॥
अस तव रूप देख सब प्रानी। पावत दुख मेंहू भयमानी २३॥
सो०-अहो विष्णु भगवान, प्राप्त भया आकाशलौं।
प्रज्वलित आग्नि समान, वर्ण अनेकन जा विषे॥
चौ०-दीप्त विशाल नेत्र मुखफारे। डरपत मन लखिरूपतुम्हारे
में नहि धरत धीर घनश्यामा। पावत नहीं शांति विश्रामा २४॥

---

१ नित्य. २ नित्य. ३ तेज, प्रताप, बल, शक्ति. ४ जातेहैं, घुसते हैं. ५ भला. ६ समझानेवाला. ७ हृदय. ८ पैर, ९ पेट. १० डरावना, भयंकर,

तवमुख डाढनकर विकराला । प्रलय अग्निसम करत विहाला ॥
लखकरही मैं तवमुख नाना । सुख नहिं पावत दिशाभुलाना ॥
हे सुरेश हे जगन्निवासा । मोपर होउ प्रसन्न हुलासा ॥ २५ ॥
पुन यह सब धृतराष्ट्र कुमारा । राज समूह सहित सरदारा ॥
भीष्म कर्ण अरु द्रोणाचारी । मम सम्बंधी रूप निहारी ॥
ते अरु मम योधान मझारी । मुख्य जिते ते सबहिं अबारी २६
सो०–डाढन करि विकराल, तोर भयानक मुखनमें ।
होकरिकै वश काल, करते शीघ्र प्रवेश सब ॥
चौ०–तिनमें केतिक तले दबाई । चूर्णित मस्तक होकर सांई ॥
दांतन संधिनमाहि लगाई । भगवन ऐसे देत दिखाई ॥ २७ ॥
यथा नदीन अनेक प्रवाहा । सन्मुख गिरत समुद्र अथाहा ॥
तथा नरनमें जोधा वीरा । मुख प्रदीप्तमें परत अधीरा ॥ २८ ॥
नाश अर्थ जिमि गिरत पतंगा । प्रज्वलित अग्नि विषे इकसंगा
तिमि नरवीर वेगही धावें । नाश अर्थ मुख विषे समावें ॥ २९ ॥
सम्पूरण लोकनको करता । ग्रासविष्णु प्रज्वलित मुख भरता ॥
सर्व ओर तैं ललित जावे । जगत समग्र बहुत दुख पावे ॥
सो०–करिकै आपन तेज, सर्व ओर तैं पूर्ण करि ।
उग्र दीप्तिगां भेज, उपजावत संतापकों ॥ ३० ॥
चौ०–उग्ररूप तुमको वरदेवा । कथन करो हमतें यह भेवा ॥
नमस्कार मम हो तुमताँई । होव प्रसन्नहु आदिमें साई ॥
तुहिजानन इच्छा मनमाही । तव चेष्टा में जानत नाही ॥ ३१ ॥
श्रीभ.उ. सर्वलोक संहार करंता । मैंहूं उग्र काल भगवंता ॥

१ आनंद, हर्ष. २ जाज्वल्यमान. ३ सब. ४ क्रांतिरावरी.
५ आदिपुरुष. ६ उद्योग ।

इन लोकन या काल मझारा । भया प्रवृत्त करन संहारा ॥
याते उभयसेन विच अबही । जे योधा थित हैं ते सबही ॥
इक तो विन या युद्ध मझारे । विद्यमान नहि रहिहैं प्यारे ॥ ३२॥
तातैं उठि हनिरिपु यश लीजै । जीत समृद्ध राजकों कीजै ॥
सो०–सव्यसाचि तू जीत, यह तव रणतैं पूर्वही ।
मैं हन राखे मीत, होव निमित्त सुमात्र तुम ॥ ३३ ॥
चौ०–भीष्म जयद्रथ द्रोणाचारी । कर्ण अन्यहू योधा भारी ॥
मैं हन राखे ते सब वीरा । हनन करो तुम हे मतधीरा ॥
मत दुख पावै कर संग्रामा । जीतैगा वैरिन बल धामा ॥ ३४ ॥
सं.उ०–हे राजन अर्जुन डरपाना । सुन अस वचनन श्रीभगवाना॥
कांपत देही जोडत हाथा । कृष्णचन्द्रको नावत माथा ॥
नम्र होय अरु गद्गद वानी । पुनहू कहतभया डर मानी ३५॥
अ.उ.हृषीकेश यह जगत असारा। तव प्रकीर्ति करि हर्षितसारा
तथा सर्व अनुरागहि पावें । राक्षस डर दिश भागे जावें ॥
सो०–सर्व झुंड सिद्धान, नमस्कार तुमकों करत ॥
अहो कृष्ण भगवान, सर्व बात है ठीकही ॥ ३६ ॥
चौ०–अहो महात्मा जगन्निवासा । हे अनंत देवेश विलासा ॥
ब्रह्माहूके गुरु कर्तारा । क्यों न करें वे नवन तुम्हारा ॥
हौ सत असत परेहू दोऊ । अक्षर ब्रह्म जु तुमही होऊ ॥ ३७॥
आदि देव तुम पुरुष पुराना । तुमही जगके परम निधाना ॥
हौ सबहींके जानन हारे । तुम हौ जानन योग पियारे ॥
परम धाम हे रूप अनंता । सर्व जगत तुम व्याप्त करंता॥ ३८॥

---

१ सब. २ वाम हस्त करिकै भी शरोंके चलानेवाला, निमित्तमात्र, ३ पूरा बोल नहीं निकलना. ४ छूठा. जिसमें कुछ सार न हो. ५ चेष्टा, कीर्ति. ६ छोह, मोह ।

वायु अग्नि शशि वरुण प्रजापाति। यम प्रपितामह तुमहि कहावाति
यातें सहस अनेकन बारा। नमस्कार तुम ताँई हमारा॥

सो०—नमस्कार हो म्हार, तथा तुम्हारे ताँइ जू॥
पुनहू बारम्बार, नमस्कार मेरा प्रभू॥ ३९॥

चौ०—आगे पीछे सबदिश ओरा। नमस्कारप्रभु तुमकों मोरा॥
वीर्य अनंत अधिक परतापी। सबही तुम हौ सब जग व्यापी ४०
अबतक अहो कृष्ण भगवाना। तव प्रभाव हमने नहिं जाना॥
कृष्णचन्द्र है सखा हमारा। मानिकै मैंने याहि प्रकारा॥
चित विक्षेप व नेह लगाई। कृष्ण सखा यादव गुहराई॥
जो प्रमाद[1] युत वचन उचारे। क्षमा करो सो कृष्ण हमारे४१॥
अच्युत तथा हेतु परिहासा[2]। शय्या और विहार विलासा॥
आसन भोजन इकले संस्थित। अथवा सन्मुख सखन कदाचित

सो०—जोन अनादर कीन, सो सबही अपराधकों॥
अप्रमेय[3] में दीन, क्षमा करावत आप तें॥ ४२॥

चौ०—उपमारहित प्रभाव तुम्हारा। तुम पित लोक चराचरसारा
तथा पूज्य गुरु गुरुतर होई। तुम सम अन्य नहीं है कोई॥
तीन लोकमें नहीं दिखावै। तुम तैं आधिक कहां तैं आवै ४३॥
तिहि तें तैं परमेश्वर ताँई। भूमी विषे दंडकी न्याई॥
आपन देहीकों कर धारन। नमस्कार करता या कारन॥
होव प्रसन्न ईश भगवाना। विनय करनके योग सुजाना॥
जैसे पिता पुत्र पति नारी। सखा सखा अपराध विसारी॥
तैसे प्रभु तुम मम अपराधा। क्षमा करनकौं योग अगाधा[4] ४४॥

---

१ भूल, चूक. २ हँसी. ३ अचिंत्य प्रभाववाले. ४ गहरा।

सो०-देखे नहीं अगार, जैसे अब तुम लखपरे ।
लखकर रूपतुम्हार, हर्षवान में हू भया ॥
चौ०-भय कारि व्याकुलहै मनमेरा । आगलरूप दिखाव सवेरा
देव ईश हे जगन्निवासा । करो प्रसाद पूर मम आसा ॥ ४५॥
में अर्जुन पहिलेकी न्याई । देखा चाहत तुमहि कन्हाई ॥
मुकुट गदा कर चक्र विराजै । सहस बाहु तुम मेरे काजै ॥
रूप चतुर्भुजही प्रगटावो । विश्वमूर्ति यह रूप छिपावो ॥ ४६॥
श्रीभगवान् उवाच ।
अर्जुन प्रसन्नता अधिकाई । निजसामर्थ्य तुम्हारे ताई ॥
में जो श्रेष्ठरूप दर्शाया । सो सब विश्वरूप कहलाया ॥
अनत अनादि तेज मय सोई । तो विन पूर्व लखानाहि कोई ४७
सो०-मनुष लोकके माहि, कुरु प्रवीर यह रूप मम ।
शक्य लखनको नाहि, तुम तैं कोऊ अन्यजन ॥
चौ०-वेद यज्ञ अध्यननहि कीना । देखनकों नहिं शक्य प्रवीना
दान कर्म तप उग्र कराई । तोऊ देखन में नहिं आई ॥ ४८ ॥
घोर रूप लख दुख मत पावो । तथा विमूढ भाव विसरावो ॥
पुन मम पूर्व रूप लख मीता । मन प्रसन्न हो नहिं भयभीता ४९॥
सञ्जय उवाच ।
अस काहि अर्जुनप्रति यदुराया । अपन चतुर्भुज रूप दिखाया ॥
सौम्यवपू हो कृष्ण प्रवीना । समाधान भय युक्तहि कीना ५०
अर्जुन उवाच ।
अहो जनार्दन तव यह रूपा । लखकै मानुष सौम्य स्वरूपा ॥
अभी भया अव्याकुल चित्ता । तथा स्वस्थता पाई मित्ता ५१॥

---

१ कृपा. २ व्याकुल चित्तपना. ३ परम अनुग्रहरूप शरीरवाला. ४ ढारस, धीरज. ५ व्याकुली भावसे रहित. ६ सुख ।

श्रीभ.उ. सो०-विश्वरूप मम जोइ, अबही तू देखत भया ।
ता स्वरूपमें मोइ, बहुत कठिनहै देखना ॥

विश्वरूप दर्शन अभिलाषा । करत नित्यही देवहु आशा॥५२॥
जैसा तूने देखा मोई । तैसा मुझ लख सकै न कोई ॥
वेद यज्ञ तप अरु करिदाना । देखनकों नहिं शक्य सुजाना ५३
अहो परंतप अर्जुन म्हारा । ऐसा जो यह रूप निहारा ॥
केवल भक्ति अनन्य हुआरा । जाना जाय सकत है सारा ॥
हो समरथ देखन जाननकूं । अरु तामें आवेश करनकूं ॥५४॥
करैं कर्म जे मोर निमित्ता । में हि परम पुरुषारथ मित्ता ॥
मेराही हो भक्त पियारा । पुत्रादिकन संगतैं न्यारा ॥

सो०-वैरभाव नहि होय, पाण्डव सब भूतन विषे ॥
पावै सो नर मोय, और नहीं कोइ पासकै ॥ ५५ ॥

इति एकादश अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

---

१ समर्थ, योग्य. २ प्रवेश ।

द्वादशअध्याय ।

दो०--"निर्गुण सगुण उपासना, तिनमें कोन प्रधान ।
द्वादशमें निर्णयकिया, कृष्णचन्द्र भगवान" ॥

चौ०--"महिमा भक्ति कही यदुराई । सोई अर्जुन पूछत भाई"॥
अ०उ०-या प्रकार हो करिकै युक्ता । तुम्है उपासतहैं जे भक्ता॥
अरु अक्षर अव्यक्तहि कोई । ऐसे भजतेहैं नर जोई ॥
अतिशय[1] योगहि जाननहारा । कहो कोन है उभय मझारा॥१॥
श्रीभ.उ.--आपन मन एकाग्र कराई। नित्त्य युक्त चित मोमें लाई॥
सात्त्विक श्रद्धायुत मो धेई । मोहि युक्ततम अभिमत[2] तेई ॥२॥
करि निरुद्ध इन्द्रियन समूहा । पुन सर्वत्र बुद्धि सम हूआ ॥
तथा सर्व भूतन हित माही । प्रीति करत जे मनुज सदाही ॥

सो०--सबमें व्यापक जोइ, अनिर्देश्य[3] अव्यक्तहू[4] ।
है अचिंत्य[5] हू सोइ, अचल[6] और कूटस्थ[7] ध्रुव[8] ॥

चौ०--भजै निरन्तर अक्षर[9] जोई । मोहीकों सो प्रापत होई३।४
जिन असक्त[10] अव्यक्तहि चित्ता । अधिक क्लेश[11] होवै तिन मित्ता॥
गति[12] अव्यक्तहि अतिदुखदाई । देहवानकों दुर्घट[13] भाई ॥ ५ ॥
जे जन बहुर सर्वही कर्मन । भए परायण[14] करि मो अर्पन ॥
योग समाधि अनन्य लगावत । मोही चिन्तत मोहि उपासत॥

---

१ बहुत करिकै. अत्यन्त अधिक. २ बहुत मानना. पसन्द किया हुआ. ३ देशकी परिधिसे बाहर. सर्वत्र. ४ शब्दके प्रवृत्तिका विषय नहीं. ५ मनके प्रवृत्तिका विषय नहीं. ६ चलनरूप विकारसे रहित. ७ कार्य प्रपञ्चसहित अज्ञानका अधिष्ठानरूप परब्रह्म. ८ परिणामी भावसे रहित. नित्य. ९ नाशरहित, ब्रह्मरूप. १० लगाहुआहै. ११ दुःख. १२ राह. १३ कठिन, विकट. १४ तत्पर.

पारथ मेरे विषे तिननका । अविशित चितवारे पुरुषनका ॥
मृत्यु युक्त सागर संसारा । शीघ्र करत मैं तिन उद्धारा ६-७
ता तैं मन मो विषे लगाओ । अपन बुद्धि मोमें ठिहिराओ ॥
सो०-तू मेरेही माहि, देह पात पाछे रहहि ।
यामें संशय नाहि, वसिहै रूप अभेद करि ८ ॥
चौ०-यदपि धनंजय चित मोमाहीं।थिर थापनकों समरथ नाहीं
तदपि योग अभ्यासहि करिये। प्राप्त होन मम इच्छा धरिये॥९॥
यदि अभ्यास समर्थ न तोई । मो हित कर्म परायण होई ॥
मम हित कर्मन करता जावै । अर्जुन परम सिद्धिकों पावै १०
होव अशक्त करन जब येहू । तव मम योगाहि आश्रय लेहू ॥
तथा जितात्मवान होजाई । सर्व कर्म करि फलन विहाई ११
अभ्यासहि तैं श्रेष्ठ ज्ञाना । ता ज्ञानहि तैं श्रेष्ठ ध्याना ॥
ध्यानहिश्रेष्ठ कर्मफल त्यागन।त्याग अनन्तर शांतिहि धारन१२
सो०-मित्र सर्व भूतान, द्वेष रहित करुणा क्षमा ।
सुख दुख जाहि समान, अहंकार ममता रहित॥१३॥
चौ०-तुष्ट सदा योगीहै जोई । सुदृढ जितात्मा निश्चय होई ॥
मन बुधि अर्पण करि मो माही।मो प्रिय भक्त सु होत सदाही१४
जासौं लोक नहीं दुख पावैं । तथा लोक नाहिं ताहि सतावैं ॥
हर्ष अमर्ष रु भय उद्वेगा । मम प्रिय हो जो इनहि तजैगा१५॥

---

१ लगेहुए. २ शरण. ३ अन्तःकरण और इन्द्रियोंको वशमें करनेवाला. ४ दया, कृपा. ५ तृप्त, सन्तुष्ट, प्रसन्न. ६ अचल. ७ दूसरेकी उत्कृष्टताका असहन. ८ घबराहट व्याकुलता.

है अनपेक्ष[१] दक्ष[२] शुचि[३] जोई । उदासीन[४] अरु गत [५]व्यथ सोई ॥
सर्वारम्भ[६] त्याग करि डारे । मोकों ऐसे भक्त पियारे १६ ॥
जो प्रिय पाय नहीं हर्षाई । अप्रिय सों नहिं द्वेष कराई ॥
शोचै नहिं इष्टार्थ[७] नशाई । चाहै नहिं वस्तू अनपाई ॥

सो०—पाप पुण्य जो होय, त्याग शील दोउन विषे ।
भक्तिवन्त असजोय, है प्रिय मोकों सो सदा ॥ १७ ॥

चौ०—शत्रु मित्र पुन गिने समाना । तथा समान मान अपमाना ॥
शीत ऊष्ण सुख दुख समजाने । रहै असंग संग नहिं आने १८
निन्दा स्तुति कों तुल्य गिनावै । यथालाभ संतोषहि पावै ॥
संयत[८] वाक रहित घर होई । थिर मति भक्त मान प्रिय मोई १९
पूर्व उक्त धर्मामृत जाना । श्रद्धा सहित करत नर पाना ॥
मोर परायण भक्त जु होई । अतिशय मोकों प्यारा सोई २० ॥
"अधम उधारण कृष्ण मुरारी । वत्सल[९] भक्त भक्ति विस्तारी ॥
तातें करो भक्ति सुखदाई । कृष्ण चरण मन बुधि चितलाई" ॥

इति द्वादश अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।

---

१ इच्छा रहित. २ चतुर. ३ बाहिर भीतर पवित्र. ४ पक्षपातसे रहित. ५ दुःखसे रहित. ६ सबही उद्यमसे रहित. ७ प्रियपदार्थ. ८ प्रयोजनमात्र: यथार्थ बोलनेवाला. ९ भक्तोंपर दया करनेवाला. परमेश्वर.

त्रयोदश अध्याय ।

दो०-"ब्रह्म जानना अतिकठिन, तासु उपाय ललाम[1] ।
नारायण की भक्ति इक, कहा परम फल श्यामं ॥
ऐसे जे यह भक्त हैं, पूर्व उक्त परकार ।
विन प्रयास[2] ही सहज में, होत तिनन उद्धार ॥
सोई भक्ती प्राप्त हित, पहिले छै अध्याय ।
कर्म मार्ग वर्णन करा, शुद्ध हिया होजाय ॥
शुद्ध भये अन्तःकरण, अस भक्ती उपजाय ।
वासुदेवमय सर्व में, जासु दृष्टि होजाय ॥
आत्म अनात्म विवेक विन, सो दृष्टी नहिं होय ।
यातें आत्म विवेकहित, प्रेम लक्षणा जोय ॥
अर्जुन ज्ञानन योगसो, प्रकृति पुरुषका ज्ञान ।
या तेरह अध्याय में, पूछत है सुख मान" ॥

अ. उ.सो०-प्रकृति पुरुष अरुज्ञान, ज्ञेय क्षेत्र क्षेत्रज्ञ षट् ।
केशव करो बखान, मो जानन की लालसा[3] ॥

श्रीभगवान् उवाच ।

चौ०-हे कुन्तीसुत यह जु शरीरा । क्षेत्र कहावत है मत धीरा ॥
ताके जाननहारे याकों । शुभ क्षेत्रज्ञ पुकारत ताकों ॥ १ ॥
पुन भारत सब क्षेत्रनमाही । मुहि क्षेत्रज्ञ तु जान सदाही ॥
ज्ञान क्षेत्र क्षेत्रज्ञ जु होई । मेरे मते ज्ञान है सोई ॥ २ ॥
युक्त क्षेत्र वह जोन प्रकारा । जिन जिन धर्मन करि विस्तारा ॥
युक्त इन्द्रियन आदि विकारा । प्रकृति पुरुष उपजावत सारा ॥
थावर जंगम भेदन न्यारा । जोन प्रकार युक्त उजियारा ॥

---

१ सुन्दर. २ यत्न, परिश्रम. ३ इच्छा.

सो में करि संक्षेप सुनाऊं। तासु वास्तविकरूप बताऊं ॥ ३ ॥

सो०—ऋषियन बहुत प्रकार, करा निरूपण तासुका।
वेदहु करि विस्तार, भिन्न भिन्न कीना कथन ॥

चौ०—तथा युक्तियन करनेहारे। अरु जे निश्चित अर्थ विचारे॥
ब्रह्मसूत्र पद बहुत प्रकारा। कीन स्वरूप कथन विस्तारा॥४॥
भूमि अग्नि जल गगन समीरा। महाभूत यह पंच शरीरा ॥
तिन भूतन कारण अभिमाना। अहंकार कहलाय सुजाना ॥
अहंकारका कारण जोई। महत्तत्त्वनामा बुधि सोई ॥
कारण बुधि अव्यक्त विचारन। जो अव्यक्त सर्वका कारन ॥
जिह्वात्वचा नासिका काना। नयन लिंग गुद मुख पद पाना ॥
शब्द स्पर्श गंध रस रूपा। मन चौबीसों तत्त्व स्वरूपा ॥ ५ ॥

सो०—सुख दुख इच्छा द्वेष, धीरज देह सचेतना[1]।
सहित विकार विशेष, क्षेत्ररूप संक्षेप यह ॥ ६ ॥

चौ०—अमानित्व[2] होवै विन माना। अदंभित्व[3] नहिं दंभ बढाना॥
हिंसा रहित अहिंसा[4] प्यारी। सह अपराध शांति[5] उर धारी ॥
होय आर्जव[6] नहि कुटिलापन। गुरु सेवा आचार्य उपासन ॥
बाह्य रु अंतर शौच प्रधाना। स्थैर्य[7] रु आत्मविनिग्रह[8] ज्ञाना७॥
हो वैराग्य इन्द्रियन बीचा। अहंकार नहि उपजै नीचा ॥
जन्म मृत्यु अरु व्याधि[9] जराई[10]। नाही दुःख दोष दर्शाई ॥८॥
हो असक्त बिच घर सुत नारी। अभिष्वंग[11]तैं रहित विचारी ॥
इष्ट अनिष्ट[12] पिरापत माही। अर्जुन हो समचित्त सदाही ॥९॥

---

१ ज्ञान रूप मनोवृत्ति. २ अपनी स्तुति न करना. ३ पाखण्ड-रहित. ४ हिंसा न करना. ५ क्षमा, हृदयविषे शीतलताई रखना. ६नम्रता.७ थिरता.८ शरीरका संजम. ९ रोग.१० बुढापा.११ प्रीति की अतिशयता. १२ शुभ, अशुभ.

सो०-करिय अनन्य सुयोग, भक्ति सु अव्यभिचारिणी ।
मेरे माही लोग, रहत विविक्ति[1]हि देशमें ॥
चौ०-विषयी जनकी सभा मझारी। हो अप्रीति प्रीति नहि धारी
आतम अनातम विवेक रु ज्ञाना । हो निष्ठा अत्यन्त सुजाना ॥
शुद्ध पदारथ दर्शन पाए। साधन ज्ञान बीस बतलाए ॥
यही ज्ञान इन तैं विपरीता । है अज्ञान रूप सब मीता ॥११॥
जानन योग वस्तुहै जोई । ज्ञेय वस्तु कहुं तुम तैं सोई ॥
तातैं जन्म मरण छुट जावै । मत्पर[2] ब्रह्म अनादि कहावै ॥
परब्रह्म सो कस बतलावै । सँत[3] अरु असँत[4] कहा नहि जावै१२
जाके सब देसन पद पाना । शिर सर्वत्र नयन मुख काना ॥
सो०-सर्व प्राणियन माहि, सर्वअचेतनें[5] वर्गको ।
करिकै व्याप्य सदाहि, थित है सर्व शरीरमें ॥ १३ ॥
चौ०-सर्व इन्द्रियन रहित प्रकासत।सर्व इन्द्रियनगुणकरिभासत
रहित सर्व संबंध विचारा । सबका धारण करनेहारा ॥
सत रज तम गुण तैं है न्यारा।तथा तिननका पोषण हारा१४॥
बाहर भीतर भूतन माही । ब्रह्म रहत व्यापक सब ठाही ॥
तैसे थावर[6] जँगम[7] रूपा । अविज्ञेय[8]है सूक्ष्म स्वरूपा ॥
तैसे दूर स्थित[9]है सोई। तथा निकट[10] अत्यन्तही होई१५॥
है अभिन्न सब भूतन माई । होत प्रतीत भिन्नकी नाई ॥
जान जगत पालक[11] सम्हारक[12]। उत्पति समय सृष्टिके कारक[13] १६
सो०-तम[14] तैं परे कहाय, ज्योतिनहूकी ज्योत सो ।
ज्ञान सैं[15] जाना जाय, श्रेष्ठरूप सुइ ज्ञेय[16] है ॥

---

१ एकांत शुद्ध स्थल. २ मैं परमप्रिय रूपहूं जिसको ताका नाम मत्पर है. ३ विधि. ४ निषेध. ५ हस्त पादादिक जड समूह. ६ जो चलै नहीं जैसे पेड पहाडादिक. ७ चलनेवाला. ८ जाननेमें नहीं आता. ९ अज्ञानीको दूर है. १० ज्ञानीके नजदीकहै. ११ पालन करनेवाला. १२ संहार करनेवाला. १३ कर्ता. १४ अज्ञान. १५ सै. १६ जानने-की वस्तु है ।

चौ०—तथा सर्व प्राणिनके जोई। हृदय बीच निवसंतहै सोई १७
ऐसे क्षेत्र ज्ञेय अरु ज्ञाना। मैं संक्षेपहि कीन बखाना ॥
इन्है जान मम भक्त सुहावा। प्राप्त योग होवै मम भावा॥१८॥
अर्जुन प्रकृति पुरुष जे होऊ। जान अनादी तू यह दोऊ ॥
तथा विकार तथा गुण जो जो। भये प्रकृति तैं जानो सो सो१९
कार्य[2] करन[3] कर्ता पन सेतू। कहा जाय प्रकृतीही हेतू ॥
सुख दुख भोक्तापने मझारी। हेतु पुरुषही कहत पुकारी २०
है थित पुरुष प्रकृतिके माहीं। प्रकृतिजन्य गुणभोग सदाहीं॥
सो०—सत योनीमें आय, तथा असत योनी विषे।
कारण गुण समुदाय[4], जन्म होत या पुरुषका ॥ २१ ॥
चौ०—वर्तमान या देह मझारा। तोऊ पुरुष सबन तैं न्यारा॥
उपद्रष्टा[5] अनुमंता[6] भर्ता[7]। तथा महेश्वर[8] पालन कर्ता॥
परम[9] आत्मा वेद उचारत। अंतर्यामी नाम पुकारत ॥२२॥
जो असभाँति पुरुष पहिचानै। सहित विकार प्रकृतिकों जानै॥
पुन वर्तत सो सर्व प्रकारा। तोहू बहुर जन्म नहि धारा ॥२३॥
बुद्धि विषे केते मन लाई। लखत आत्मा ध्यान लगाई ॥
कोइक सांख्ययोग करि देखत। को इक कर्म योग करि पेखत२४
पुनः अन्य जो अस नहि जानत। अन्य गुरुन तैं सुन पहिचानत॥
सो०—अर्जुन उतरत पार, श्रुतिहि परायण पुरुषहू।
तरत न लागतवार, मृत्युयुक्त संसार तैं ॥ २५ ॥
चौ०—जेते जीव जगतमें जानी। थावर जंगम उपजत प्रानी॥
सबहि क्षेत्र क्षेत्रज्ञ संयोगा। भारत उपजे जानो लोगा ॥२६॥

---

१. प्रेरक. २ शरीर. ३ इन्द्रिय. ४ समूह. ५ साक्षी. ६ निकटमात्रहीसे शीघ्रही अनुग्रहका कर्ता. ७ पोषक. ८ ब्रह्मादिकनका ईश्वर. ९ सबसे उत्कृष्ट।

नाशवान सब भूत मझारा । सम आविनाशी रहित विकारा ॥
अस परमेश्वरकों जो देखै । सोई भली भांति तैं पेखै ॥ २७ ॥
ईश्वर है सर्वत्र समाना । अस दृष्टी करि जाहि लखाना ॥
सो न आत्मकारि आत्म विनाशत । तथा परमगति नितवहपावत २८
करत प्रकृतिही सर्व प्रकारा । सर्व कर्म अस जोइ निहारा ॥
तथा अकर्ता आत्मा देखैं । सोईही सम्यक् करि पेखैं ॥२९॥

सो०–संस्थित एक मझार, थावर जंगम भूत सब ।
तथा तिनन विस्तार, होवत ताही एक तैं ॥

चौ०–देखत अस जा काल मझारा । एक ब्रह्म हो तबही प्यारा ३०
निर्गुण आदि रहित है जोई । अव्यय यह परमात्मा होई ॥
देह विषे कौंतेय रहावै । करै नही नहि कर्म लिपावै ॥ ३१ ॥
जैसे अंबर सर्व गताई । सूक्ष्मता करि नहीं लिपाई ॥
तैसे आतमदेहन माही । रहत सदा पर लेपत नाही ॥ ३२ ॥
जैसे भारत सूर्य प्रकासत । सर्व लोकमें एकहि भासत ॥
तिमि क्षेत्रज्ञ केर आभासा । सर्वक्षेत्रकों करत प्रकाशा ॥३३॥
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ बखाने । ज्ञान दृष्टि करि भेद जु जाने ॥

सो०–तुम से कही बुझाय, भूतनकी प्रकृती जु में ।
तातैं मोक्ष उपाय, जान परम पद पाय सो ॥ ३४ ॥

इति त्रयोदश अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

---

१ पूरीतौरपर, बराबर.

चतुर्दश अध्याय ।

दोहा–"प्रकृति पुरुष संयोगतैं, होवतहै संसार ।
तेरहके अध्यायमें, सोई कहा मुरार ॥
अब चौदहमें कहतहैं, सुनिये चतुर प्रवीन ।
प्रकृति पुरुषहैं उभयही, ईश्वरके आधीन ॥
अरु विचित्र संसार यह, गुणन संगतैं होय ।
गुण वृति न्यारी कहतहैं, जीतन कों संग सोय ॥"

चौ०–अर्जुन सर्व ज्ञान के माही । उत्तम परम ज्ञान जो आही ॥
सो मैं तुमप्रति पुनहु बखानत । परम मुक्ति भे मुनि जिहि जानत १
येही ज्ञान पुरुष जो पावै । मोर स्वरूप हि लय होजावै ॥
सृष्टि समय नाहे वह उपजतहै।प्रलयकालमें नाहि नसतहै॥२॥
ब्रह्म प्रकृति मो योनि सुजाना । सोई गर्भाधान ठिकाना ॥
उत्पादक शक्तिहि में धारत । सकल सृष्टि उपजावत भारत३॥
कुन्ती सुत सब योनि मझारी । जे शरीर उपजत हरवारी ॥
तिनकी है यह प्रकृती माता । मैं हूं पिता बीजका दाता॥४॥

सो०–सत रज तम गुण तीन, माया तैं उपजत भए ।
करत अपन आधीन, तन में अव्यय जीवकों ॥ ५ ॥

चौपाई ।

तिनमें अनघ[2] स्वच्छता[3] कारण । सत्त्व प्रकाशक दुःख निवारण ॥
सुख सँग जीव आतमा ताई । तथा ज्ञान संग बाँधत भाई ६ ॥
तृष्णा और संग उपजावै । रजगुण राग रूप कहलावै ॥
सो कौन्तेय देह अभिमानी । जीव कर्म सँग बांधत जानी ७॥

---

१. उत्पन्न करना. २ पापरहित अर्जुन. ३ पवित्रता.

तम गुण उपजावत अज्ञाना । भारत मोहित जीव निधाना ॥
निद्रा अरु आलस्य प्रमादा । तिन करि सर्व जीवकों बांधा ८
सत गुण भारत सुखदर्शावै । रज गुण कर्मन माहि लगावै ॥
संगत उपजा ज्ञान नसावै । तम प्रमाद संयुक्त करावै ॥ ९ ॥

सो०—रहै सत्त्व गुण पूरि, रज तम भारत पेलिकै ।
तम तैं सत रज दूरि, सत तमकों पेलै जु रज ॥ १० ॥

चौ०—उपजत देहि इन्द्रियन द्वारा । जबही ज्ञान रूप उजियारा
तबही या भांती तुम जानो । बृद्धिहि प्राप्त भया सतमानो ११
भरतर्षभ[2] रज गुण अधिकाई । द्रव्य वस्तु इच्छा बढजाई ॥
लोभ प्रवृत्ति[3] अशम[4] उपजाई । कर्मनका आरंभ कराई ॥ १२ ॥
कुरुनंदन जब तम बढ जावै । उभय प्रकाश प्रवृत्ति मिटावै ॥
तथा प्रमाद मोह उपजावै । सबही करतब कार्य भुलावै ॥ १३ ॥
सत गुण वृद्ध होय जा काला । तजै जीव निज देह विशाला ॥
तब उत्तम विद[6]लोकहि जावै । मल[7]तैं रहित जु स्थान कहावै १४

सो०—जीव मृत्युकों पाय, रज गुणकी वृद्धी भए ।
कर्मवंत घर जाय, होवैहै उत्पन्न वह ॥

चौ०—तम गुण वृद्ध देह छुटजावै । पश्वादिक योनिनको पावै १५
सत गुणका फल निर्मल जोई । सुकृत कर्म सुखदाई होई ॥
पुन राजसका दुख फल गावै । तामसफल अज्ञान बतावै ॥ १६ ॥
सत गुण तैं उपजतहै ज्ञाना । लोभ रजो गुण तैं उपजाना ॥
तम गुण मोह प्रमाद बढावे । अरु अज्ञानहु आय दिखावै ॥ १७ ॥
सात्त्विक ऊंचे लोकन जावै । राजस मध्यम लोक वसावै ॥

---

१ असावधानता. २ भरतवंश विषे श्रेष्ठ अर्जुन. ३ निरन्तरही प्रयत्न वाला होना. ४ संकल्प विकल्प. ५ उद्यम. ६ हिरण्यगर्भादि देवता. ७ पाप.

निकृष्ट तमो गुण वृत्तिमझारी। स्थिततामस मधि अधो सिधारी ॥ १८
जब द्दृष्टा गुण कर्ता जानै । नहीं अन्य कौं कर्ता मानै ॥
सो०—तथा गुणन तैं जोइ, परे आत्मा जानता ॥
तब द्दृष्टा जन सोइ, ब्रह्म भावकों प्राप्तहो ॥ १९ ॥
चौ०—कर्ता देह तीन गुण होई । तिनकों त्याग करै नर जोई ॥
जन्म मृत्यु दुख जरा मिटावै । ब्रह्मानन्द स्वरूपहि पावै २०॥
अ.उ. तीन गुणन उल्लंघन हारा। कस प्रभु तस लक्षण आचारा
लांघत गुणन सु कौन प्रकारा । सो मोकों कहु करि विस्तारा २१

श्रीभगवान् उवाच ।

प्रकाश प्रवृत्त मोह यह तीनो । हे पाण्डव गुण कारज चीनो ॥
भए प्रवृत्त द्वेष नहिं धरते । भए निवृत्त न इच्छा करते ॥२२॥
बैठै उदासीन की नाई । गुण नहिं चला सकैं ता ताई ॥
गुण वर्तत निज कारज माहीं । जाने मम सम्बन्धहु नाहीं॥२३
सो०—सुख दुख लखै समान, रहै स्वरूपहि ज्ञान विच ॥
मृतिका पिंड पषान, और सुवर्णहि सम लखै ॥
चौ०-प्रियअप्रियकोसमकरि जाने। निन्दा स्तुतीतुल्यकरिमाने२४
तुल्य उभय मान रु अपमाना । मित्र पक्ष अरि पक्ष समाना॥
सर्वारम्भ त्याग करि दीना । गुणातीत कहलाय प्रवीना॥२५॥
पुन जो नर मोमें चित देवै । भक्ति अनन्य योग करि सेवै ॥
करै उलंघन यह गुण सोई । मोक्ष होन हित समरथ होई ॥२६
अर्जुन ब्रह्म प्रतिष्ठा में हूं । अव्यय मोक्ष ठिकाना में हूं ॥
में हूं शाश्वत धर्म अनूपा । में हूं परमानन्द स्वरूपा ॥ २७ ॥
"कीन अनुग्रह मुरलिधरैया । वर्णा त्रिगुण विभाग कन्हैया ॥
इति चतुर्दश अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥
॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

---

१ नीचे. २ अनादि. नित्य. नाशरहित.

पञ्चदश अध्याय ।

दो०-"कृष्णाधीन प्रकृति इक, तीन गुणन समुदाय ।
अनासक्ति रख तिन विषे, केवल भक्ति दृढाय ॥
नारायण की भक्तिसे, जीति तिनन को भाय ।
या सागर संसार से, बिना कष्ट तरजाय ॥
कहा चतुर्दश ध्यायका, तात्पर्य सुखदाय ।
अब वह ज्ञान जु जगतसे, बिन वैराग न पाय ॥
साधन ज्ञान विराग है, ता उत्पत्ति निमित्त ।
वृक्ष रूप ठैराय जग, मिथ्या कहत सुमित्त ॥
जाने मिथ्या याहि जो, तो नहिं कछू रहाय ।
वृक्ष रूप संसार कों, वर्णत पन्द्रह ध्याय" ॥

श्रीभगवान् उवाच ।

चौ०-यह पीपल रूपी संसारा ।[1] ऊर्द्ध[2] मूल[3] अरु नीचे डारा ॥
है परवाह[4] रूप अविनाशी । वेद पात जो धर्म प्रकाशी ॥
जानत वृक्ष रूप अस जोई । वेदन[5] वेत्ता है नर सोई ॥ १ ॥
ता संसार वृक्ष की सारी । शाखा तर ऊपर विस्तारी ॥
गुणन नीर करि बाढत डाली । विषयन रूप पल्लवन वाली ॥
मूल वासना रूपी सींचे । अनुस्यूत[6] हैं ऊपर नीचे ॥
कर्मन विषे जुहै अधिकारी । बँधे मनुष्य सुलोक मझारी ॥२॥
थित संसार माहि जे प्रानी । ते सब याका रूप न जानी ॥
सो०-आदि न मध्य न अन्त, जानत या संसारका ।
बँधा मूल अत्यन्त, ऐसे तरु अश्वत्थको ॥

---

१ आशय. २ ऊपर. ३ जड. ४ प्रवाह-लगातार बहना, बहाओ. ५ वेदोंका जाननेवाला. ६ व्यापक.

चा०–दृढ असंग हथयार बनावै। तातैं दुसह[1] मूल तरु ढावै ३॥
तासु अनन्तर है तिन लोगू। वृक्ष मूल पद जानन योगू॥
होकर थित जा पदके माहीं। बहुर जन्मकों पावत नाहीं॥
या संसार वृक्ष की जातैं। प्रवृति[2] पुरानी पसरी तातैं॥
ताही आदि पुरुष नियराई। शर्णहि प्राप्त होंहि ते जाई॥४॥
मान मोह जिन उभय बिसारे। संग दोष जीता तिन प्यारे॥
तत्पर[3] ब्रह्म विचार मझारी। अरु परमात्म स्वरूप निहारी॥
सुख दुख द्वंद्व अरु काम मिटाना। अव्यय पद पावै विद्वाना ५॥
सो०–अर्जुन जा पदपाय, आवृति[4] कों नहि प्राप्त हो।
सो मम धाम कहाय, सूर्य प्रकाश न करसकै॥
चौ०–नही चन्द्र नहिं अग्निप्रकाशत।स्वयं प्रकाश रूप में भाषत६
जीव लोकमें जीव सनातन। मेराही है अंश पुरातन॥
षट मन युक्त इन्द्रियां जेती। खैंचत जगत भोग हित तेती ७
जब जीवात्मा विग्रह[5] त्यागै। इन्द्रिय हू ता पाछै लागै॥
तथा देह जब दूसर पावै। इन्द्रिय हू ता संगहि आवै॥
जैसे पुष्पादिक में स्थाना। वायु संग में गंध उडाना॥ ८॥
जिह्वा नयन नाक त्वक[6] काना। अरु मन अन्तः करण बखाना
जीव अधिष्ठाता[7] हो इनको। भोगत शब्दादिक विषयनको॥९॥
सो०–करते देहहि त्याग, तथा देह में थित हुए।
तथा विषय अनुराग[8], युक्त गुणों करिकै हुए॥
चौ०मूढपुरुष नहिं देख सकत हैं।ज्ञान चक्षुजन किन्तु लखतहैं १०
योगीही निज बुद्धि मझारी। करि प्रयत्न थित आतमनिहारी॥

---

१ दुखसे सहाजाय, बहुत कठिन. २ निरन्तरही प्रयत्नवाला होना. ३ लगाहुआ. ४ लौटना. ५ शरीर. ६ खाल. ७ मालिक, स्वामी. ८ स्नेह, प्रीति.

अशुध चित्त जन यत्नहु करता। अविवेकी को लखनहिं परता ११
तेज अग्नि सूरज में जोई। और चन्द्रमा माही होई॥
सो सब जगत प्रकाश कराई। मेराही सब तेज लखाई॥१२॥
पुन भूमी को आपन बल करि। धारत भूतन में अति दृढ करि॥
अथवा रसमय सोम[1] रूप हो। पुष्ट करत सब ओषधिमें सो१३॥
जठरा अग्नि रूप में धरता। प्राणिन देह आश्रयेण[2] करता॥

सो०–अन्न जु चार प्रकार, चोष्य लेह्य भोजन भखन।
पाचन करत सम्हार, प्राण अपान सहायसों॥ १४॥

चौ०–बहुर सर्वके हृदय मझारी। मोकों आतम रूप निहारी॥
मोतैं होवत स्मृति अरु ज्ञाना। ज्ञान स्मृति त्यौं ही ढकजाना॥
तथा सर्व वेदों करि कैही। जानन योग पदारथ में ही॥
संप्रदाय पर वर्[3]तक मैंही। वेदन अर्थहि वेत्ता[4] मैंही॥ १५॥
दोही पुरुष जगतमें जानो। इक अक्षर दूसर क्षर मानो॥
सर्व भूत क्षर[5] रूप कहावैं। अरु अक्षर[6] कूटस्थ गिनावैं॥ १६॥
उत्तम पुरुष सुभिन्न गिनावै। परम आत्मा नाम कहावै॥
करि प्रवेश त्रैलोकहि धारत। अव्यय ईश्वर ताहि पुकारत १७॥

सो०–जड पदार्थ क्षर होय, में अ[8]तीत तिहि तें सदा।
चेतन अक्षर जोय, तासों उत्तम जान मुहि॥

चौ० यातैं लोकन वेदन माही। पुरुषोत्तम परसिद्ध सदाही १८
जो संमोह[9]रहित हो मानत। मोकों अस पुरुषोत्तम जानत॥

---

१ सोमलता नाम जडी और उसका रस जो यज्ञमें पिया जाता है. २ आसरा. ३ करनेवाला. ४ जाननेवाला. ५ ब्रह्मादिक सकल प्राणियोंके शरीर. ६ अविनाशी, निर्विकार. ७ चेतन भोक्ता. ८ परे. ९ निश्चित बुद्धि होकै.

सो भारत सर्वज्ञ कहावै। भक्ति योग करि मोकों ध्यावै॥१९॥
अहो अनघ या भांति बताया। गोप्य शास्त्र में तुमहि सुनाया॥
या शास्त्रहि जाने जो भारत। ज्ञानी ह्वैकै होय कृतारथ॥२०॥
"ऐसी भांति पञ्चदश गाया। वृक्षरूप संसार बताया॥
क्षर अक्षर मय ताहि बखाना। पुरुषोत्तम व्यापक भगवाना॥
कृष्ण चन्द्र सो जान कन्हैया। वोही जग तैं पार लगैया॥"

इति पञ्चदश अध्याय समाप्त ॥ १९ ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

शोडश अध्याय ।

दो०-"या शोडश अध्यायमें, सृष्टी उभय प्रकार ।
दैव आसुरी भेदतैं, कीनी हरी प्रचार ॥
दैवी में छब्बीस गुण, आसुर में षट दोष ।
अर्जुन तैं संक्षेपमें, कहे भक्त मन पोष ॥"

श्रीभगवान् उवाच ।

चौ०-चित प्रसन्न भयरहित हु जोई । ज्ञान योग माही थिर होई ॥
देय दान इन्द्रियन सँजोवै[1] । यज्ञ पूर्णमासादिक जोवै ॥
वेदपाठकों करै सदाही । होवे तपी नम्र मन माही ॥ १ ॥
पीडा देइ न काहू प्राणी । बोलै सदा यथारथ वाणी ॥
क्रोध कबहु उपजै नहि मित्ता । हो उदारता[2] प्रसन्न चित्ता ॥
नहि परोक्ष[3] में निंदा करता । दीनन माहि दया उर धरता ॥
कोमल चित अरु चंचल नाही । लाजत करन अकारज माही ॥
व्यर्थ काम सबही छुट जावत । ह्वय प्रगल्भ[4] अरु क्षमा[5] जुडावत[6] २

सो०-दुखतें चंचल चित्त, जाका कबहू होय नाहि ।
बाहिरभीतर मित्त, शुद्ध होय द्रोह[7] हि तजत ॥

चौ०-करै पूज्यताका अभिमाना । अपने विषे न कबहु सयाना ॥
भारत दैवी सम्पद जाए । ते अभयादिक ये गुण पाए ॥ ३ ॥
धर्म ध्वज[9] उर[10] कपट[11] बितान[12]ना । धन बिद्याका करै गुमान[13]ना ॥
क्रोधवंत अरु हो अभिमानी । अति ही निठुर[14] होय अज्ञानी ॥

---

१. संजमकरै. २ दातृत्व. ३ पीठपीछे. ४ साहसी. ५ कोई निंदा करै तोभी क्रोध उपजै नहीं, शांति. ६ ठंडा करना. ७ वैर. ८ कल्याण करनेवाले. ९ पाखण्डी. १० हृदय. ११ धोखा, १२ तम्बू. १३ घमंड, १४ कठोर निर्दय,

आसुर सम्पद सन्मुख जाए। तिनमें यह षट दोष लखाए ४ ॥
जो दैवी सम्पद सौं युक्ता। तत्व ज्ञान अधिकारी मुक्ता ॥
आसुर सम्पद युक्त जु होई। पाय नित्य बंधन कौं सोई ॥
"सुन अर्जुन भा दुबिधा माही। ज्ञान धिकारी हूं कि नाही ॥
सो०—जान हृदय की बात, समाधान करि कहत हरि"।
शोच करो जिन तात, तू दैवी सन्मुख भया ॥ ५ ॥
चौ०—हे पारथ या लोक मझारी। दैव आसुरी सृष्टि प्रचारी॥
दैवी करि बिस्तार सुनाई। आसुर सम्पत सुन अब भाई ॥६॥
प्रवृति[1] निवृति[2] न आसुर जाने। सत्य शौच आचार न माने७॥
ते यों कहत जगत के माही। वेद पुराण प्रमाण सुनाही ॥
जग कारण करता नहि कोई। यह विचित्र[3] स्वाभाविक होई॥
यातें जगत अनीश्वर गावैं। मैथुन तें उत्पत्ति बतावें ॥
काम पुरुष नारीका जोई। होय प्रवाह रूप जग सोई ॥ ८ ॥
नष्ट आतमा अल्प बुद्धि नर। धर अस दृष्टि रहे निश्चयकर ॥
सो०—उग्र कर्म कर्तार, प्रगट होत जग क्षय[4] निमित ॥ ९ ॥
दंभ[5] मान[6] मद[7] धार, करत असम्भव[8] काम कौं ॥
अशुचि व्रतकौं धार, ते आसुर अविवेकतें।
क्षुद्र[9] देव निर्धार, आराधनमें प्रवृत हों ॥ १० ॥
चौ०—अर्जुन तथा अपरिमित[10] चिंता। आश्रय कीन मरनपर्यंता॥
विषयन भोग परम पुरुषारथ। येही सुख निश्चय अस धारत११

१ किसीकाममें लगना, आसुर लोग धर्मको नहीं जानते अर्थात् ता धर्मके प्रतिपादक विधिवाक्यको भी नहीं जानते. २ छुट्टी, आसुर लोग अधर्मको नहीं जानते अर्थात् ता अधर्मके प्रतिपादक निषेध वाक्यको भी नहीं जानते. ३ भांति भांतिका नाना प्रकारका, अनोखा. ४ नाश हेतु. ५ पाखंड, कपट. ६ अपनेको बडा जानना. ७ घमंडकरना. ८ नहीं होनेवाला. ९ छोटा, तुच्छ. १० अपार.

आशा रूपी पाश[1] बँधाए । काम क्रोध दोऊ चित लाए ॥
विषय भोग हितकरि अन्याया । धन संचय[2] इच्छा अधिकाया १२
यह में पाया अबकी बेरी । लहूं मनोरथ और घनेरी ॥
यह धन मोर गृहस्थ मझारी । बहुर होइगी सम्पत भारी १३॥
या वैरीकों में ही मारा । औरहु का करि हौं संहारा ॥
में भोगी मेंही भगवाना । मेंही सुखी सिद्ध बलवाना ॥ १४॥
सो०—में हि धनी कुलवान, मो सदृशहि[3] को आन है ।
करूं यज्ञ अरु दान, तातें पाऊँ हर्षकों ॥
चौ०—ते आसुरजन याहिप्रकारा। मोहितहैं अविवेक दुआरा १५
भ्रमत अनेक मनोरथ चित्ता । मोह जाल तैं आवृत[4] नित्ता ॥
ऐसे विषय भोग अनुरागी[5] । अशुचि नरकमें पडत अभागी १६
आपहि आप श्रेष्ठता लेई । अन्य जनन करि नाही तेई ॥
नम्र भाव तिनमें कछु नाही । युक्त मान मद अरु धनमाही ॥
नाममात्र ते यज्ञ करावें । अविधिपूर्वक दंभ बढावें ॥ १७ ॥
अहकार बल दर्पहि[6] धरिकै । काम क्रोधका आश्रय करिकै ॥
आत्म[7] देह परदेह मझारी । मो तैं द्वेष करत ते भारी ॥
सो०—जे नर वृद्ध कहाय, तिनकी ते निंदा करत ।
पडत नरकमें जाय, ताही तैं आसुर पुरुष ॥ १८ ॥
चौ०—ते आसुर सुमनुष्यन बीचा । हैं अति क्रूर[8] अधम अरु नीचा
मोतें द्वेष करत सब ठाही । तातैं जगत मार्ग के माही ॥
अशुभ आसुरी योनि मझारी । मैं इन सबहि निरंतर डारी १९

१ फांसी. २ जोडना. ३ बराबर. ४ ढके हुए. ५ प्रेमी. ६ अपने तईं बडा जानना, घमंड. ७ आसुर लोग हटसे यज्ञादिक कर्म करतेहैं और पशुओंको वाध करिकै मुझको प्रसन्न करि अपने काम पूर्ण किया चाहते हैं सो सर्व प्राणियोंको दुख देनेसे में दुःख पाता हूं क्यों कि में अन्तर्यामी हूं इस प्रकार वे अपनी और दूसरों की देहमें मुझ से द्वेष करते हैं. ८ निठुर ।

आसुर योनि पाइ नर सोई । जन्म जन्म में मूढ़ हि होई ॥
वेद विमुख मुहि पाव न तेई । तातें पार्थ अधम गति लेई ॥२०॥
अधम योनि में डारन हारा । नरक द्वार यह तीन प्रकारा ॥
काम क्रोध अरु लोभ कहावें । तातें यह तीनों बिसरावें ॥२१॥
यह जो तीन नरक के द्वारा । त्यागन करा भया नर प्यारा ॥
सो०—हे कुन्ती सुत सोइ, सिद्ध करत नित श्रेय कों ।
तातें प्रापत होइ, परम गती कों अवश ही ॥ २२ ॥
चौ०—कहे धर्म जे शास्त्र मझारी । तज वर्तत निज इच्छाचारी ॥
सो नर अंतःकरण की शुद्धी । नाही प्रापत होवे बुद्धी ॥
लोक माहि नहि होवे सिद्धी । नही परम गति अरु सुख वृद्धी ॥
कार्य अकार्य व्यवस्था माही । है यह शास्त्र प्रमाण सदाही ॥२३॥
यातें शास्त्र बताये धर्मा । नीकी विधि सो कीजे कर्मा ॥
अर्जुन तू कर्मन अधिकारी । यातें कीजे कर्म विचारी ॥
कर्महि मूल मुक्ति अरु ज्ञाना । कीजे कर्मन सहित विधाना ॥
युद्धादिक जो कर्म तुम्हारे । करन योग हौ तुम मम प्यारे ॥२४॥

इति षोडश अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।

सप्तदश अध्याय ।

दो०–"सतरहके अध्यायमें, त्रय श्रद्धादि विभाग ।
अर्जुन तैं श्रीकृष्णने, वर्णा सह अनुराग[1]" ॥

अर्जुन उवाच ।

चौ.–करत शास्त्रविधि तजकर जे जन।श्रद्धायुत यज्ञादिक कर्मन
निष्ठा[2] तिनकी कौन कन्हाई। सत रज वा तमगुण कहलाई ॥ १ ॥

श्रीभगवान् उवाच ।

मानुष श्रद्धा तीन प्रकारा । सो सत रज तम गुण अनुसारा ॥
उपजत श्रद्धा पूर्व स्वभावा । सो सुन सब में भेद बतावा ॥ २ ॥
श्रद्धा केवल सात्विक होई । भारत सकल जीवमें सोई ॥
श्रद्धामय यह पुरुष कहावै । जो जस तस श्रद्धा गुहरावै[3] ॥ ३ ॥
देव सात्विकी पूजन योगू । यक्ष राक्षस राजस लोगू ॥
सेवहि भूत प्रेत गण जेई । पुरुष तामसी जानो तेई ॥ ४ ॥
सो०–करत पुरुष तप घोर, वेद शास्त्र विधिसे विमुख ।
काम राग बल जोर, अहंकार अरु दंभ युत ॥ ५ ॥
चौ०–हैं थित भूत समूह शरीरा । करत तिन्हैं ते कृष[4] दै पीरा ॥
अंतर रहत शरीर मझारी । मोहू कों ते करत दुखारी ॥
हैं ते रहित विवेक विशाला । जानो आसुर निश्चय वाला ॥ ६ ॥
तीन भांतिका पुन आहारा । सर्व प्राणियन होवे प्यारा ॥
तैसहि यज्ञ तपस्या दाना । तिन सब भेद सुनो धर काना ॥ ७ ॥
आयु सत्व बल प्रीति बढ़ावै । चित प्रसन्न हो रोग नशावै ॥
होंहि चीकने अरु रसवंता । अतिहि मनोहर अरु थिरवंता ॥
ऐसे जे आहार कहाये । सात्विक पुरुषनके मनभाये ॥ ८ ॥

---

१ प्रीति सहित. २ धर्ममें तत्परता, श्रद्धा, विश्वास. ३ पुकारा जावै. ४ दुर्बल.

सो०–कडुवा खाटा होय, खार उष्ण मिरचादि अति ।
कोदौं कँगुनी जोय, सरसों राई आदि हौं ॥
चौ०–राजस जन यह प्रिय अहारा। शोक रोग दुख देत अपारा९
अन्न रँधे इक पहर बिताया । गतरस[1] अरु दुर्गंध बसाया ॥
बासी भोजन करे बचाया । भक्षण योग न सो बतलाया ॥
ऐसा जो भोजन कहलावै । सो तामस पुरुषन मन भावै १०
फल कामन तैं रहित बखाना । यह अवश्य कर्त्तव्यहि जाना ॥
असमनानिश्चितशास्त्रविहितजो। यज्ञ करत सात्विक कहायसो११
भरत श्रेष्ठ पुन यज्ञहि करते । स्वर्गादिक फल आशा धरते ॥
करत दंभ हित मानुष जोई । राजस यज्ञ जान तू सोई॥१२॥
सो०–विना मंत्र विधिहीन, विना अन्न अरु दक्षिणा ॥
श्रद्धा रहित जु कीन, तामस यज्ञ कहाय सो ॥ १३ ॥
चौ०–पूजै देव विप्र गुरु ज्ञानी । होय पवित्र नम्रता आनी ॥
ब्रह्मचर्य धर हिंसा त्यागे । सो शारीरक तप अनुरागे ॥१४॥
बोलै वचन नहीं भयकारी । होय सत्य अरु प्रिय हितकारी ॥
अरु जो करत वेद अभ्यासा। वाचक तप कहाय सुख रासा१५
अति प्रसन्न मन निर्मल होई । क्रूर न हो कोमल हो सोई ॥
मुनिवत होइ मनन जिय धारी । विषय वासना सर्व बिसारी ॥
कपट रहित व्यवहार मझारी।मानस तप या भांति उचारी१६
श्रद्धा युत तप तीन प्रकारा । गुणन भेद कर कहत नियारा॥
सो०–फल अभिलाष मिटाय, कर श्रद्धा संयुक्त तप ॥
चित एकाग्र कराय, सात्विक तप सो जानिये ॥१७॥
पूजा आदर मान, करैं जु तप पुन दंभकारि ॥

---

१ अत्यन्त पकने करिकै शुष्क अथवा जिस आहारका अंश निकास लिया हो.

सो राजस तप जान, चंचल छिनक समाज है ॥१८॥
चौ०-करै जु तप पीडा[1] संघाता। दुर[2] आग्रह करि कीना जाता॥
अथवा करन विनाश पराया। शिष्ट[3] पुरुष तामसी बताया १९
दैन दान मन निश्चय कीजै। अन उँपकारी[4] पात्रहि दीजै ॥
उत्तम[5] देश रु काल[6] मझारी। सोई सात्विक दान विचारी २०
दान देइ जो प्रत्युपकारा[7]। अथवा फल कामन मन धारा ॥
पछतावे जो देती बारा। सोई राजस दान उचारा ॥ २१ ॥
विना देश अरु काल विचारे। देवै दान अपात्रहि[8] प्यारे ॥
तिरस्कार[9] कर विन सत्कारा[10]। तामस दान जान निर्धारा २२
सो०-ॐ तत्सत् यह तीन, त्रिविधि रूप ब्रह्महि कथत ॥
इन तैं विधि[11] रचदीन, विप्र वेद मख[12] आदिमें ॥ २३ ॥
चौ०-ॐ शब्द तातैं उच्चारन। वेदन वेत्ता करि निर्धारन ॥
शास्त्र युक्त विधि[13] मख तप दाना। करत निरन्तर[14] कर्म सुजाना २४
चाहत मुक्ति सु तत् उच्चरते। तज फल क्रिया यज्ञ तप करते॥
दान क्रिया करि विविध प्रकारा[15]। तातैं होत ज्ञान उजियारा २५
साधुभाव[16] सद्भाव[17] मझारा। सत अस शब्द करत उच्चारा ॥
पार्थ प्रशंस्ति[18] सु कर्मन माही। उच्चारत सत शब्द सदाही २६
यज्ञ दान तप संस्थित जोई। सत् या भांति कहावत सोई ॥
फल तज कर्म करत ताके हित। सत् उच्चारण अतिप्रशस्त नित २७
सो०-हवन दान तप धर्म, पार्थ अश्रद्धा करि करत ॥
असत कहावत कर्म, उभय लोकफल देत नहिं ॥२८॥
इति सप्तदशअध्याय समाप्त ॥ १७ ॥
॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

---

१ शरीर. २ हठसे. ३ उत्तम जन ४ नहीं उपकार करने वाला. ५ कुरुक्षेत्र काशी आदि तीर्थस्थान. ६ ग्रहणादिक समय. ७ बदला चाहना. ८ नकली मस्करे नटादिक. ९ अनादर. १० आदर. ११ ब्रह्म. १२ यज्ञ. १३ रीति. १४ सदैव. १५ नानाभांति. १६ श्रेष्ठ. १७ श्रेष्ठता. १८ सराहनेयोग्य.

अष्टादश अध्याय ।

दोहा—"अष्टादश अध्यायमें, मोक्षरूप संन्यास ।
हृषीकेश वर्णन करा, जान अर्जुन हि दास ॥"

अर्जुन उवाच ।

चौ०—महाबाहु हे केशिनिषूदन[1] । हृषीकेश[2] में चाहत बूझन ॥
त्याग और सन्यास स्वरूपा । पृथक जानना चाहत रूपा १॥

श्रीभगवानुवाच ।

कर्म सकाम त्याग जो करते । सो सन्यास विज्ञ[3] चित धरते ॥
सर्व कर्म फल त्याग विभागा । पुरुष विवेकी भाषत त्यागा २
योगी सांख्य कहत अस केते । दोषी कर्म तजै सब जेते ॥
यज्ञ दान तप कर्म न त्यागे । लोग मिमांसक अस अनुरागे ३
श्रेष्ठ भरत ता त्याग मझारी । सुन मम निश्चय कहत विचारी ॥
नरशार्दूल[4] त्याग विस्तारा । कथन कराहै तीन प्रकारा ॥ ४ ॥

सो०—यज्ञ दान तप कर्म, तजे नहीं कीजे इन्हें ।
पूतें[5] करत यह धर्म, फल इच्छा तैं रहित जन ॥ ५ ॥

चौ०—तज कर्तृत्व[6] पार्थ अभिमाना। तथा छांड करिके फल नाना
करन योग यह कर्म विचारा । अस निश्चित उत्तम मत म्हारा ६ ॥
हे अर्जुन पुन जीवन माहीं । कर्मन त्याग सम्भवै नाहीं ॥
तमँ[7] तैं नित्य कर्म तज दीना । तामस त्याग कथन यह कीना७
नित्य कर्म समझत दुखदाई । काय क्लेश भय ताहि विहाई ॥
सो तो राजस त्याग कहावै । नाही कबहु त्याग फल पावै ८
करन कर्म यह योगाहि होई । ऐसी मति धर अर्जुन जोई ॥
नित्य कर्मसँग अरु फल तज करा। करत सुसात्विक कहत शिष्टनर[8] ९

---

१ केशीनामदैत्यको मारनेवाले. २ इन्द्रियोंके प्रेरक. ३ पण्डित. ४ सिंह, श्रेष्ठ. ५ पवित्र करना. ६ करने योग्य, अवश्य, उचित. ७ मोह. ८ उत्तम पुरुष. अच्छे.

सो०–सात्विक त्यागी जोइ, जवी सत्व करि व्याप्त हो ।
तत्त्व ज्ञानी होइ, तथा सर्व संशय रहित ॥
चौ०–बुरे कर्ममें द्वेष न मानै । भले विषे नहि प्रीतहि आनै १०
पुरुष देहधारी जु सदाही । सकल कर्म तज सकत सुनाही ॥
कर्मन करै फल हि बिसरावै । वास्तव त्यागी सोइ कहावै ११
तीन भांति कर्मन फल जानो । नर्क स्वर्ग भूलोक सुमानो ॥
जन्म अनन्तर जन अन त्यागी । होई त्रिविध कर्म फल भागी
अरु फल त्यागी है नर जोई । फल भोगनकों पाय न सोई १२
बाहू महा पांच हैं कारण । सुन मोतैं कर चितमें धारण ॥
सबही कर्म सिद्धि हित प्यारे । कहे सांख्य सिद्धान्त मझारे १३
सो०–चेष्टा[1] विविध प्रकार, अधिष्ठान[2] कर्ता[3] करन[4] ।
पंचम दैवें[5] विचार, येही कारण कर्मके ॥ १४ ॥
चौ०–करत शरीर वचन मन ठानी । भला बुरा यह कर्म पिरानी
तिन सबके यह पांचों कारण । हैं अस निश्चय कीजै धारण १५
इन के रहते कर्म न बीचा । आत्माहि मानत करता नीचा ॥
लखत न राहित उपाधि असंगा । शून्य विवेक बुद्धि मतभंगा १६
में कर्ता स्वभाव जिन नाही । बुद्धि लिप्त नहि कर्मन माही ॥
सो ज्ञानी मारै इन प्रानी । हनै तोउ नहि बंधन आनी ॥ १७ ॥
ज्ञान[6] ज्ञेय[7] परिज्ञाता[8] तीनो । कर्म प्रवर्तक[9] इनकों चीनो ॥
करण कर्म करता विस्तारा । कर्मन संग्रहं[10] तीन प्रकारा १८ ॥
सो०–ज्ञान कर्म कर्तार, त्रिविध होत गुण भेदतैं ।
भाषे सांख्य मझार, सो मोतैं सुन नीक विधि ॥१९॥

---

१ प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान वायु तिनकी चेष्टा. २ शरीर, देह. ३ अहंकार. ४ चक्षु श्रोत्रादिक अनेक प्रकारकी इन्द्रिय और मन बुद्धि. ५ भाग, प्रारब्ध. ६ यज्ञ कर्म करे शुभकारी है ऐसा समझना. ७ शुभकारी कर्म. ८ ज्ञानवंत पुरुष. ९ प्रेरक. १० इकट्ठा.

चौ०—इक अव्यय व्यापक सब माही। न्यारे में न्यारा वह नाही॥
जा करि सत्ता भाव विचारा। सात्विक ज्ञान जान निर्धारा २०॥
एकहि पृथक जतावै ज्ञाना। पृथक विधान[1] भाव पुन नाना॥
भिन्न भिन्न सब जीव लखावै। सो तो राजस ज्ञान कहावै॥२१॥
पुन जो कोइक कार्य मझारी। ज्ञान युक्ति तें रहित उचारी॥
जानै आत्म शरीर प्रमाना। मूर्ति प्रमान ईश भगवाना॥
तत्त्व शून्य अरु तुच्छे[2] ज्ञाना। शिष्ट पुरुष तामसी बखाना॥२२॥
नित्य कर्म को करै सदाही। हो आसक्त नही तिन माही॥
सो०—राग[3] रु द्वेष[4] मिटाय, फलकी इच्छा ना करै।
करै कर्म चित लाय, सात्विक कर्म कहाय सो॥२३॥
चौ०—पुन सकाम[5] नर साहंकारा[6]। क्लेश प्राप्त बहु करनेहारा॥
करत कर्म जे ऐसे होई। राजस कर्म कहावै सोई॥ २४॥
पुन अनुबंध[7] धन[8] क्षय न सम्हारे। हिंसा पौरुष[9] विना विचारे॥
मोहहि कर्मारंभ कराई। सो तो तामस कर्म कहाई॥ २५॥
अहंकार विन अरु संग मुक्ता। धृति[10] उत्साह[11] उभय करियुक्ता॥
निर्विकार सिधि असिधि मझारी। अस कर्ता सात्विकी उचारी२६
रागी[12] तथा कर्म फल चाहत। लुब्ध[13] अशुचि हिंसा मन भावत॥
हर्ष शोक करि युक्त प्रवीना। राजस कर्ता कथन सु कीना॥२७॥
सो०—सावधान नहि होय, अविवेकी नाही नवै।
शक्ति छिपा निज सोय, ठगै अन्य हो आलसी॥

---

१. शास्त्रमें कही हुई रीति. २ अल्प, थोडा. ३ पुत्रादिकनकी प्रीतिके लिये कर्म न करा हो. ४ शत्रुविषे वैर भावके लिये न करा हो. ५ फलकी इच्छा धारिकै. ६ मेरे समान कोई नही में भला गृहस्थ हूं मैं बडा आचारी हूं ऐसे अहंकारसे करै. ७ इस कर्मसे आगे शुभ होगा कि अशुभ. ८ बहुत द्रव्यका खर्च. ९ सामर्थ. १० धीरज. ११ उद्यमसे युक्त. १२ कामादिकों करिकै युक्त चित्त. १३ पराये धनकी चाहना करनेवाला.

अरु विषाद युत चित्त, थोडे दिन के कामको ।
देर करत बहु मित्त, कर्ता तामस कहत सो ॥ २८ ॥
चौ०–बुद्धि तथा धृति तीन प्रकारा। भेद धनंजय गुण अनुसारा॥
सो सब तुम तैं करत बखाना। भिन्न भिन्न तुम सुनो सुजाना॥२९
बुद्धी जोन भयाभय जाने । प्रवृतिहि तथा निवृति पहिचाने ॥
कार्य अकार्य मोक्ष अरु बंधन । सात्विक बुद्धि पृथाके नंदन ३०॥
जोन बुद्धि करि धर्म अधर्मा । पारथ कार्य अकार्यहि मर्मा ॥
है जस तस नहि जानत होई। राजस बुद्धि कहावत सोई॥३१॥
तम करि पारथ बुद्धि ढकाई । सो अधर्मको धर्म बताई ॥
सबही अर्थ लखै विपरीता । तामस बुद्धि कहावै मीता ॥३२॥
सो०–पारथ जो मन प्रान, इन्द्रिन क्रिया निरुद्ध करि ।
सो धृति सात्विक जान, योगतै[1] अव्यभिचारिणी॥३३॥
चौ.-अर्जुन पुन फलकी इच्छा धरि। कर्तृत्वा[2]दिक अभिनिवेशकारि
जा धृति करि यह काम विचारै । धर्म अर्थ तीनोंको धारै ॥
इच्छा मोक्ष कबहु नहि लावै । धृति सु राजसी पार्थ कहावै॥३४॥
जा धृति करि दुर्बुद्धी भाजन । पार्थ कदाचित करत न त्यागन॥
मद भय स्वप्न रु शोक विषादा। धृतिसु तामसी जान सुखादा ३५
सुन मोतैं सुख तीन प्रकारा । भरतर्षभ पुन तासु मझारा ॥
करि अभ्यास अनंदित होवै । तथा दुक्खके अंतहि जोवै॥३६॥
"अर्जुन मिष[3] प्रभु अध[4]म उधारन। दीना ज्ञान सकल जगतारन"॥
सो०–विष सम प्रथम दिखाय, होय अमृत सम अंतमें ।
सुख सात्विकी कहाय, आतम बुद्धि प्रसाद जन॥३७॥

---

१ तैं. २ अवश्य करिकै संपादन करने योग्य है, नित्य कर्तव्य-रूप करिकै निश्चय करै है. ३ बहाने. ४ नीच.

चौपाई ।

अर्जुन जो सुख उपजत लोगा। विषय इन्द्रियन के संयोगा ॥
तथा प्रथम आरम्भ मझारा । अम्मृत सम लागत है प्यारा ॥
तथा अन्तमें विष सम होई । सुख राजसी कहावै सोई ॥ ३८
जो सुख आदि अन्तके माही । मोहित बुद्धी करत सदाही ॥
आलस निद्रा तैं उपजावै । मिल प्रमाद[1] तामसी कहावै ३९॥
प्रकृति जन्य जो सकल पदारथ ।तीन गुणन करि रहितहु पारथ॥
सो पृथिवी अरु स्वर्गहु माही । विद्यमान नर देवन नाही ४०
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य गिनावैं । तथा परंतप शूद्र कहावैं ॥
सो०—तिनके कर्म स्वभाव, पृथक पृथक हैं गुणन करि ॥
"तुम तैं कहा दुराव", श्रवण करो तुम तिननकों ४१

चौपाई ।

शम[2] दम[3] शौच[4] क्षांति[5] तप[6] ज्ञाना[7] । आर्जव[8] आस्तिक[9] अरु विज्ञाना[10]
यह नव ब्राह्मण कर्म वताये । अर्जुन ते स्वभाव उपजाये ४२॥
तेज पराक्रम धृति चतुराई । हटै न पीछे बीच लडाई ॥
दान देइहो ईश्वरभावा[11] । कर्म स्वभाव क्षात्र उपजावा ॥४३॥
खेती गोरक्षण व्यापारा । वैश्य स्वभाविक कर्म उचारा ॥
तीन वर्ण परचर्या[12] करना । शूद्र स्वभाव कर्म उर धरना॥४४॥
निज निज कर्म प्रवर्तैं जोई । ताकों सिद्धि पिरापत होई ॥
आपन कर्मन सिद्धी पाना । सो प्रकार अब करत बखाना ४५
सो०-भूतन प्रवृति कराय, व्याप्त करा यह विश्व जिहि ॥
मनुष सिद्धिकों पाय, तिहि स्वकर्म संतुष्ट करि॥४६॥

---

१ असावधानता. २ मनका निग्रह. ३ इन्द्रियोंका रोकना. ४अन्तःकरण की पवित्रता और बाहिर शरीरकी पवित्रता. ५ क्षमा. ६ पूर्वोक्त शरीरतप. ७ शास्त्रज्ञान. ८ नम्रता. ९ शास्त्रपुराण अरु परलोक ये सबही सत्य हैं ऐसी बुद्धि होय. १० अनुभव. ११ प्रभुहोकै प्रजा विषे डण्ड करना. १२ सेवा करना.

चौ०--नीकाहू होवै पर धर्मा । विगुन[1] भला अर्जुन निजकर्मा॥
कछू पाप याकों नहि लागे । धर्म आपने के अनुरागे[2] ॥४७॥
अर्जुन आपन कर्मन माही । होय दोष तउ त्यागे नाही ॥
सब आरंभन दोष लखाई । धूम सहित जिमि अग्नि छिपाई४८
बुद्धि असक्त कहूं नहि होवै । इच्छा रहित जितात्मा[3] जोवै ॥
परम सिद्धि निष्कर्म विलासा । पावै अर्जुन करि संन्यासा४९
सिद्धि प्राप्त जिमि ब्रह्म हि पावै । निष्ठा[4] परा[5] ज्ञानकी आवै ॥
कुन्ती सुत मैं तोन प्रकारा । संक्षेपहि करि करत प्रचारा ५०
सो०-धैर्य नियम निर्धार, युक्त विशुद्ध सु बुद्धि करि ॥
राग द्वेषकों मार, शब्दादिक विषयन तजै ॥ ५१ ॥
चौ०-बसै देश एकान्त मझारा। परिमित[6] भोजन करनेहारा॥
जीते हैं मन वाचा काया । नित्यहि ध्यान योग चित लाया ॥
तथा प्राप्त वैरागहि होवै ×। अहंकार बलदर्प[7]हि खोवै ॥५२×॥
काम क्रोध संग्रहको त्यागे । ममता रहित शांति उर पागे ॥
ब्रह्म लखन कों समरथ होई । साक्षात् हि कर सक है सोई ५३
प्रसन्नातमा[8] शोक न करता । ब्रह्मभूत[9] नहि इच्छा धरता ॥
सब भूतन में समता आवै । मेरी परा[10] भक्ति कों पावै ॥ ५४ ॥
परा भक्ति करि जैसा मेरा । सर्व व्यापी रूप घनेरा ॥
सो०-सत चित आनंदरूप, मैं जैसा जामें रहूं ।
तत्व तैं मोहि अनूप, तैसा तामें तहँ लखै ॥

---

१ अङ्गहीन असम्यक् अनुष्ठान कराहुआ. २ करे. ३ अन्तःकरण सर्व विषयोंसे निवृत्त करनेवाला. ४ धर्ममें तत्परता, श्रद्धा. ५ अधिक. ६ नियमित न थोडा न बहुत अनुमानका हो. ७ घमण्ड. ८ शम दमादिक साधनोंके अभ्याससे शुद्ध चित्तवाला पुरुष. ९ वेदान्त शास्त्रके श्रवण मनन के अभ्याससे अहं ब्रह्मास्मि इस प्रकारके दृढ निश्चयवाला. १० श्रेष्ठ.

चौ०-तबहि ज्ञान[1] का लय होजावै। तदनन्तर मो माहि समावै ५५
सदा कर्म सब करत पिरानी। अर्जुन मम शर्णागत आनी ॥
मोर अनुग्रह तैं जब जावै। शाश्वत[2] अव्यय[3] पद कों पावै॥५६॥
सर्व कर्म मो अर्पण कीजै। चित मे मो तत्परतौ[4] लीजै ॥
निश्चय बुद्धि योग कों सेई। मोही में आपन चित देई॥५७॥
जो अर्जुन मोमें चित लाई। मम प्रसाद सब दुख मिटजाई॥
अहंकार तैं सुनि हो नाही। होवे नाश तोर छिन माही ॥ ५८
अहंकार का आश्रय पाई। माने अस नहि करूं लडाई ॥
सो०-तो यह निश्चय तोर, है मिथ्या सन्देह विन ॥
निज स्वभाव बर जोर, तो पै युद्ध करायहै ॥ ५९ ॥
चौ०-तू स्वभाव निज कर्म बँधाई। चाहत करन न मोहहि पाई॥
कुन्ती सुत सो रणके ताई। बेवश हुय करि हो तुम भाई ६०
सकल पिरानिन हृदये माही। अर्जुन ईश्वर रहत सदाही॥
जिमि कठ पुतली यंत्रे[5] चढाई। मायावी[6] तिन नाच नचाई॥
काल चक्र तिमि चढे पिरानी। ईश्वर निज माया भरमानी ६१
हे भारत तू सर्व प्रकारा। ईश्वर का ही गहो सहारा ॥
ईश प्रसादहि मिलै सुजाना। परा शांति शाश्वत स्वस्थाना ६२
यह में तुम हित कीन बखाना। गुह्य गुह्य तर आतम ज्ञाना॥
सो०-गीता शास्त्र विचार, आदि अन्त पर्यन्त लों॥
कीजे ताहि प्रकार, जा प्रकार इच्छित तुम्हें ॥ ६३ ॥
चौ०--सबतें अतिही गुह्य हमारे। परम वचन पुन सुनिये प्यारे
तू मोकों अतिशय प्रिय जोई। तातैं तोहित कहत हूं सोई६४॥

---

१ अन्तःकरण वृत्ति विषयका ज्ञान. २ अनादि. ३ नित्य. ४ मेरेहीमें लगा रहै. ५ तार. ६ तमाशा करनेवाला.

आपन मन मोही में दीजै । अर्जुन भक्ति हमारी कीजै ॥
यज्ञादिक मम हित अनुसरिये । नमस्कार मोही कों करिये ॥
ऐसी भांति शरण मम आवै । मोर कृपा तैं मोकों पावै ॥
अति प्रिय तू है मोहि सुजाना । करत प्रतिज्ञा सत्य प्रमाना ६९
सर्व धर्म कों त्यागन कीजै । मेरी एक शरण गहलीजै ॥
करूं दूर सब पाप तुम्हारे । अर्जुन तू मत शोक बढारे ॥६६॥
सो०—तव हित कथनहिं कीन, अर्जुन गीता शास्त्र में ।
जे नर तपसे हीन, तिन उपदेश न योग यह ॥
चौ.—भक्ति शुश्रूषा नहि जिन माही।।तिन उपदेश योग्य यह नाही
तथा पुरुष मो द्वेषी होई । तिन तैं कहन योग्य नहि सोई ६७
जे नर परा भक्ति कर म्हारी । परम गुह्य यह शास्त्र विचारी॥
मम भक्तन तैं कहै सुनावै । विन संशय मोकोंही पावै ॥ ६८ ॥
मम प्रिय करता है नहि होई । पुरुषन में दूसर नर कोई ॥
वह मोकों है अतिही प्यारा । अन्य नही जग माहि निहारा ६९
धर्म रूप सम्बाद हमारा । पढै गुनै अरु करै विचारा ॥
ज्ञान यज्ञ तिन मम हित कीना।अस निश्चय मम पार्थ प्रवीना ७०
सो०—याहि सुनै जो कोइ, श्रद्धा युत दूषण विना ॥
मुक्ति पाप तें होइ, पुण्यवन्त लोकन लहै ॥ ७१ ॥
चौ.—तुम जु सुना यह गीता मित्ता । होकर पार्थ एकाग्रहि चित्ता
कारि अज्ञान मोह उपजाया । कहा पार्थ सो तोर नसाया॥७२॥

अर्जुन उवाच ।

सुनत वचन बोले अस पारथ । हे अच्युत मैं भया कृतारथ ॥
तव प्रसाद मम मोह मिटाया । आतम ज्ञान स्मृतिहि मैं पाया
हूं संस्थित करि संशय दूरी । आज्ञा तोर करनकों पूरी ७३॥

---

१ सेवा. २ यह कृष्ण भगवान् हमारा आत्मा रूपहीहै.

सं.उ.-भाव महान सुना मैं राजन । वासुदेव अर्जुन संभाषन॥
सो अद्भुत सम्वाद कहावै । सुनतहि रोम खडा हो जावै॥७४॥
हे राजन मैं सो संवादा । सुनत भया श्री व्यास प्रसादा ॥
सो०-पुरुषोतम भगवान, योगेश्वर श्री कृष्ण जू ॥
निज मुख करा बखान, परम गुह्य या योगकों ॥७५॥
चौ-केशव अर्जुन सुना विवादा । पुण्य रूप अद्भुत संवादा ॥
करि सुमरन राजन हर वारा । रोम हर्ष तन होत हमारा ७६
अद्भुत रूप कृष्ण भगवाना । राजन वार वार कर ध्याना ॥
पुन पुन विस्मय मोकों होई । मोकों महत आचरज सोई ॥ ७७
योगेश्वर श्री कृष्ण मुरारी । जासु ओर पारथ धनु धारी ॥
विजय भूति श्री नीति तहांही।अस निश्चय मम होत सदाही७८
"हरि अर्जुन संवाद बखाना । भक्ति हेतु चित तामें आना ॥
परमानन्द परम कल्याना । दाता मोक्ष वचन भगवाना ॥
सो०-धन्य कृष्ण भगवान्, दास आस पूरण करी ।
मैं पापन की खान, तुमही पार लगायहो" ॥

इति अष्टादशअध्याय समाप्त ॥ १८ ॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥

॥ ग्रन्थ समाप्ति ॥

चौ०—भया ग्रन्थ पूरण सुखदाई । कृष्ण कृपा जानो अधिकाई
महिमा जासु न जात लखाई । प्रभुजी की अद्भुत प्रभुताई ॥
मिले रहें अरु नाहि मिलाई । धन्य धन्य चातुर चतुराई ॥
बहुर कृपा जा पर यदुराई । करैं कन्हैया पार लगाई ॥
ज्ञान खान यह गीता माई । नित्य नियम करि जो जन ध्याई
सो जग जीवन लाभ उठाई । छांड़ शरीर परम पद पाई ॥
सज्जन की यह सज्जनताई । आप पढें अरु अन्य पढाई ॥
हरि भक्तन की यही बडाई । औरहि आप समान कराई ॥
दो०--हैं जबलग महि अग्नि जल, वायू अरु आकाश ।
हे भगवन् तव लग रहै, यह गीतार्थ प्रकाश ॥

हरि भक्तोंका दास—

फाल्गुन कृष्ण ५ बुधवार संवत् १९६५.ता० १० फरवरी सन् १९०९ ई०

कन्हैसिंह गवर्नमेण्ट पेन्शनर केशरगञ्ज, (बाबू मोहल्ला) अजमेर. तथा निवासी शाहगञ्ज (कटरा सोरों) आगरा.

